Visit Dwarkadheeshvastu.com For
FREE Vastu Consultancy, Music, Epics, Devotional Videos
Educational Books, Educational Videos, Wallpapers
****
All Music is also available in CD format. CD Cover can also be print with your Firm Name
****
We also provide this whole Music and Data in PENDRIVE and EXTERNAL HARD DISK.
Contact : Ankit Mishra (+91-8010381364, dwarkadheeshvastu@gmail.com)

॥ श्रीहरिः ॥

उपदेशप्रद कहानियाँ

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१. स्त्रियोंके लिये कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग	१
२. नाम-कीर्तनसे शत्रुपर विजय	११
३. भगवदर्थ कर्म और भगवान्‌की दयाका रहस्य	२९
४. दानका रहस्य	३५
५. ज्ञान और भक्तिके साधनसे अहंता-ममताका अभाव	४१
६. सर्वभूतहिते रताः	५८
७. राजा चक्रवेणके त्यागका प्रभाव	७२
८. जीवनकी सफलताके लिये अनुपम शिक्षा	८०
९. भगवत्प्राप्तिके सरल उपाय तथा प्रेमका रहस्य और प्रभाव	९९
१०. भगवान्‌की असीम दयाका फल	१२४
११. जैसा करे संग वैसा चढ़े रंग	१३७
१२. सत्यकी महिमा	१४९

स्त्रियोंके लिये कल्याणके कुछ घरेलू प्रयोग

(एक उपदेशप्रद दृष्टान्त)

किसी संयुक्त परिवारमें दो स्त्री-पुरुष, उनके पाँच लड़के और दो लड़कियाँ थीं। लड़कोंका विवाह हो चुका था। उनमेंसे चारके बाल-बच्चे भी थे। लड़कियाँ दोनों कुआरी थीं। सबसे छोटे लड़केका ब्याह कुछ ही दिन पहले हुआ था। उसकी स्त्री अभी मैकेमें ही थी। इस प्रकार दोनों लड़कियोंको मिलाकर घरमें कुल सात स्त्रियाँ थीं। वे चाहतीं तो सब मिलकर घरका काम-काज अच्छी तरह कर सकती थीं; परन्तु उनकी आपसमें बनती न थी। वे एक-दूसरीसे जला करती थीं और घरके काम-काजसे जी चुराती थीं। उनमेंसे प्रत्येक यही चाहती कि उसे कम-से-कम काम और अधिक-से-अधिक आराम मिले। आये दिन उनमें तू-तू, मैं-मैं हो जाया करती थी; घरमें अशान्ति और कलहका साम्राज्य था। इसी परिस्थितिमें सबसे छोटे लड़केकी स्त्री भी अपने मैकेसे आ गयी। वह उत्तम घरानेकी लड़की थी। उसे बचपनसे ही बड़ी अच्छी शिक्षा मिली थी। वह अपनेको उस क्षुब्ध वातावरणमें पाकर घबरा उठी। अपनी सास और जिठानियोंको आपसमें लड़ते-झगड़ते देख वह एक दिन रो पड़ी और अत्यन्त आर्त होकर मन-ही-मन भगवान्‌से प्रार्थना करने लगी—'प्रभो! क्या यही सब देखने-सुननेके लिये मुझे आपने इस घरमें भेजा है? यहाँ तो मैं एक दिन भी न रह सकूँगी। मुझे रात-दिनका झगड़ा अच्छा नहीं लगता। न जाने मैंने पिछले जन्मोंमें ऐसे कौन-से दुष्कर्म किये हैं, जिनके कारण मेरा इस घरमें ब्याह हुआ है?' रोते-रोते उसकी आँख लग गयी। उसे स्पष्ट सुनायी दिया मानो उसे कोई सान्त्वनापूर्ण शब्दोंमें कह रहा है—'बेटी! घबरा मत, इस घरका सुधार करनेके लिये ही तुझे यहाँ भेजा गया है। तुझ-जैसी लड़कीकी यहाँ आवश्यकता थी।'

इन शब्दोंको सुनकर छोटी बहूको बड़ी सान्त्वना मिली। उसकी सारी घबराहट जाती रही। उसने मन-ही-मन अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। उसने कलहका मूल जानना चाहा। उसे मालूम हुआ कि उसकी सास और जिठानियों तथा ननदोंने आपसमें घरका काम बाँट लिया है। सास और ननदें ऊपरका काम करती थीं और बहुएँ पारी-पारीसे भोजन बनातीं। अन्य सभी कामोंके लिये भी पारी बाँध ली गयी थी; परन्तु यदि उनमेंसे दैवात् कोई बीमार हो जाती तो दूसरी बहुएँ उसके बदलेका काम करनेमें आनाकानी करतीं। वे उसपर बहानेबाजीका आरोप करतीं और अनेक प्रकारके आक्षेप करतीं। लड़ाईका दूसरा कारण यह होता कि जब कभी घरमें बाहरसे कोई खाने-पीनेकी चीज आती तो सब-की-सब यह चाहतीं कि अच्छी-से-अच्छी चीज अधिक-से-अधिक मात्रामें मुझे मिले। बस, इसीपर झगड़ा शुरू हो जाता और आपसमें गाली-गलौजतककी नौबत आ जाती। कभी-कभी मामूली बातोंको लेकर बखेड़ा खड़ा कर लिया जाता। यदि कभी एक भाईका लड़का दूसरे भाईके लड़केसे लड़ पड़ा तो इसीपर दोनोंकी माताएँ एक-दूसरीको खूब खोटी-खरी सुनातीं। इन सब बातोंको देखकर छोटी बहूको बड़ा दुःख हुआ। जिस दिन उसने भगवान्‌का आदेश सुना, उसी दिनसे वह झगड़ा मिटानेका उपाय सोचने लगी। उसने सोचा कि भगवान्‌ने इसी बहाने उसे सेवाका बड़ा ही सुन्दर अवसर प्रदान किया है। वह एक दिन चुपकेसे अपनी सबसे बड़ी जिठानीके पास गयी। उस दिन उसकी सबेरे रसोई बनानेकी पारी थी। उसने जिठानीसे कहा—'जिठानीजी ! मैं आप सबसे छोटी हूँ। मेरे रहते आप रसोई बनायें—यह उचित नहीं मालूम होता। फिर आपको तो बाल-बच्चोंकी भी सँभाल करनी पड़ती है। मेरे जिम्मे और कोई काम है नहीं। इसलिये बड़ा अच्छा हो यदि आप अपनी रसोई बनानेकी पारी मुझे दे दें। मैं आपका बड़ा उपकार मानूँगी।' जिठानी पहले तो बड़ी देरतक आनाकानी करती रही। वह बोली—'बहू ! अभी तो तुम्हारे खाने-पहननेके दिन हैं। जब कुछ सयानी हो जाओ, तब चूल्हा फूँकनेके

काममें पड़ना। अभी कुछ दिन आराम कर लो, गृहस्थीका सुख भोग लो। आखिर तो यह सब करना ही है।' छोटी बहूने कहा—'जिठानीजी! मैं आपके पैरों पड़ती हूँ, मुझे इस तरह निराश न करें। यही दिन तो मेरे काम करनेके हैं। अभीसे यदि मुझे आपलोग आरामतलब बना देंगी तो आगे जाकर मैं किसी कामकी न रह जाऊँगी। अवश्य ही मुझसे कोई बड़ा अपराध हो गया है, जिसके कारण मुझे आप अपने अधिकारसे वञ्चित कर रही हैं।' यह कहकर वह रोने लगी। अब तो जिठानी और अधिक उसकी बातको न टाल सकी। उसने अपनी पारी उसे दे दी। इस प्रकार क्रमशः उसने सभी जिठानियोंसे अनुनय-विनय करके उन सबकी पारी ले ली। यह काम अपने जिम्मे लेकर वह इतनी प्रसन्न हुई मानो उसे कोई निधि मिल गयी हो। वह प्रतिदिन सबेरे बड़े चावसे सबके लिये रसोई बनाती और सबको खिला-पिलाकर अन्तमें स्वयं भोजन करती। उसे ऐसा करनेमें तनिक भी थकान नहीं मालूम होती, बल्कि उसे इसमें बड़ा सुख मिलता। वह दिनोंदिन दूने उत्साहसे इस कामको करने लगी। वह रसोई भी बहुत अच्छी बनाती और फुर्तीसे बनाती। बात-की-बातमें बहुत-सी सामग्री तैयार कर लेती। यदि कभी कोई मेहमान भी आ जाते तो वह उकताती न थी। उन्हें भी बड़े प्रेमसे भोजन कराती; क्योंकि वह इसमें अपना लाभ समझती थी। उसकी इस अद्भुत लगन एवं सेवाभावको देखकर सभी कोई उसकी प्रशंसा करने लगे। एक दिन उसकी सास उसके पास आयी और बोली—'बेटी! तूने यह क्या किया? सबकी पारी अपने जिम्मे क्यों ले ली?' उसने बड़ी नम्रतासे उत्तर दिया—'माताजी! मेरे माता-पिताने मुझे यही शिक्षा दी है कि यह शरीर तो एक दिन मिट्टीमें मिल जानेवाला है। इसे अधिक-से-अधिक दूसरोंकी सेवामें लगाना चाहिये। यही इसका सबसे अच्छा उपयोग है। सेवा ही सबसे बड़ा धन है। अतः आपसे भी मेरी यही प्रार्थना है कि आप मुझे इस कामके लिये बराबर उत्साह दिलाती रहें।' उसका यह उत्तर सुनकर सास चकित हो गयी। उसने सोचा कि यह तो

कोई देवी है, किसी मानुषीका ऐसा सुन्दर भाव हो ही नहीं सकता।

दूसरे दिन ससुरजी बहुओंको देनेके लिये बहुत-सी साड़ियाँ लाये। उन्होंने प्रत्येक बहूको वर्षभरके लिये बारह-बारह साड़ियाँ दीं। छोटी बहू अपने हिस्सेकी साड़ियोंमेंसे दो साड़ियाँ लेकर अपनी सबसे बड़ी जिठानीके पास गयी और विनयपूर्वक बोली—'जिठानीजी! मुझे यहाँ आते समय पिताजीने बहुत-सी साड़ियाँ दी थीं। मेरा उनसे अच्छी तरह कांम चल सकता है। आप मुझपर दया करके ये दो साड़ियाँ अपने लिये रख लीजिये। मुझे इससे बड़ा सुख मिलेगा और मैं आपका बड़ा अहसान मानूँगी।' जिठानीने बहुत आनाकानी की, परन्तु उसका अत्यधिक आग्रह देखकर वह उसे अस्वीकार न कर सकी। इसी प्रकार आग्रह करके उसने दो-दो साड़ियाँ अपनी अन्य जिठानियोंको तथा दो अपनी सासको दीं और एक-एक साड़ी अपनी ननदोंको दे दी। उसके इस औदार्यपूर्ण व्यवहारकी भी सबके मनपर गहरी छाप पड़ी। सासके पूछनेपर उसने कहा—'माताजी! मैं इस कार्यमें भी आपकी मदद एवं प्रोत्साहन चाहती हूँ। शरीरकी भाँति ये वस्त्र आदि भी क्षणभङ्गुर हैं। इनका संग्रह आत्मकल्याणमें बाधक है। जीते-जी मोह एवं आसक्ति आदिके कारण इनमें फँसावट हो जाती है और मरते समय भी यदि इनमें मन अटका रहा तो प्रेत आदि योनियोंमें भटकना पड़ता है। सेवाके काममें लगाना ही इन सबका सर्वोत्तम उपयोग है। नहीं तो एक दिन ये यों ही नष्ट हो जायँगी।' सास उसका यह उत्तर पाकर बहुत प्रसन्न हुई और उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगी। इधर घरमें पैसा भी बढ़ गया। ससुरजीने प्रत्येक बहूको छः-छः गहने तैयार कराके दिये। छोटी बहूने अपने हिस्सेके गहनोंको भी अपनी चारों जिठानियों और ननदोंमें बाँट दिया और अपने लिये उसने एक भी न रखा। पूछनेपर उसने यही कहा कि 'मेरे पास अपने पिताजीके दिये हुए बहुत-से गहने पड़े हैं। मेरे लिये उतने ही पर्याप्त हैं।' इस प्रकार उसने अपने साधु व्यवहार एवं उदारतासे सभीके हृदयमें स्थान कर लिया। सभी उससे अत्यधिक सन्तुष्ट थे।

फिर एक दिन मौका देखकर उसने अपनी बड़ी जिठानीसे सायंकालकी रसोई बनानेकी भी आज्ञा माँगी। उसने कहा—'मेरे रहते आप रसोई बनानेका कष्ट करें, यह मेरे लिये बड़ी ही लज्जाकी बात है।' वह इस प्रकार कह ही रही थी कि उसकी सास वहाँ आ पहुँची। वह बड़ी उत्सुकतासे अपनी बड़ी बहूसे पूछने लगी—'यह किस बातके लिये आग्रह कर रही है ?' जब उसे मालूम हुआ कि छोटी बहू सायंकालकी रसोई भी अपने ही हिस्सेमें कर लेना चाहती है, तब तो वह हँसकर बोली—'तुमलोग अपनी इस छोटी देवरानीसे सावधान रहना। यह तुमलोगोंसे वास्तविक लाभकी वस्तु ठग लेना चाहती है।' बड़ी बहू सासके अभिप्रायको न समझकर बोल उठी—'सासजी ! आप यह क्या कह रही हैं ? आपकी यह छोटी बहू तो बड़ी ही साध्वी है, सब प्रकार प्रशंसाके योग्य है। इसके सम्बन्धमें आप ऐसी बात कैसे कह रही हैं ?' सासने कहा—'तुम समझी नहीं। यह हमलोगोंकी सेवा करके—हमें गहने-कपड़े तथा शारीरिक आराम आदि तुच्छ वस्तुएँ देकर बदलेमें तप आदि हमारी आध्यात्मिक कमाई—जो आत्मोद्धारमें सहायक है, हमसे छीन रही है। इससे बढ़कर ठगाई और क्या होगी ? इसने मुझे एक दिन बताया था कि दूसरोंकी सेवा करनेसे अन्तःकरण शुद्ध होकर आत्मकल्याणमें समर्थ हो जाता है। इसने यह भी कहा था कि शुद्ध भावसे रसोईके रूपमें घरवालोंकी सेवा करनेसे एक ही सालमें कल्याण हो जायगा। इसलिये बहू ! सायंकालकी रसोईका काम तो मैं अपने जिम्मे लूँगी। मुझे भी तो आत्माका कल्याण करना है। मैं ही उससे वञ्चित क्यों रहूँ ?' सासकी यह बात सुनकर सबकी आँखें खुल गयीं। फिर तो सबको अपने-अपने कल्याणकी फिक्र पड़ गयी। कहाँ तो सब-की-सब कामसे जी चुराती थीं और छोटी बहूके एक समयकी रसोईका भार अपने सिरपर ले लेनेसे एक प्रकारके सुख एवं सुविधाका अनुभव करती थीं; इसके विपरीत अब सबने अपनी-अपनी सबेरेकी रसोई बनानेकी पारी छोटी बहूसे वापस ले ली। जहाँ कामको लेकर कुछ ही दिन पहले सबमें झगड़ा होता था, अब

सब-की-सब बड़े उत्साह एवं दिलचस्पीके साथ अपने-अपने हिस्सेका काम करने लगीं। छोटी बहूका उपाय काम कर गया।

जब छोटी बहूने देखा कि ये लोग कोई भी अब रसोईका काम मुझे नहीं सौपेंगी, तब उसने सेवाका दूसरा ढंग सोचा। उसने विचार किया कि घरमें रोज आठ-दस सेर आटेकी खपत है, वह सारा-का-सारा बाजारसे खरीदा जाता है। इससे तो अच्छा है कि मैं बड़े सबेरे उठकर स्वयं गेहूँ पीस लिया करूँ। इसमें कई लाभ हैं। जो आटा बाजारसे आता है, वह प्रायः पुराने घुने हुए गेहुँओंका होता है। उसमें मिट्टी मिली हुई रहती है। फिर मशीनी चक्कियोंमें जो आटा पिसता है, उसका सार मारा जाता है। वह स्वास्थ्यके लिये हानिकारक होता है। मेरी जिठानियोंने रसोईका काम तो मुझसे वापस ले लिया। अब आत्मकल्याणके लिये मुझे यही काम करना चाहिये। उसने तुरंत यह प्रस्ताव अपने पतिके सामने पेश कर दिया। तुरंत गेहूँकी व्यवस्था हो गयी। बाजारसे आटा खरीदना बंद कर दिया गया। छोटी बहूने दिनमें गेहूँ साफ करके रख दिये और दूसरे दिन सबेरे ही मुँह-हाथ धोकर गेहूँ पीसनेके काममें जुट गयी। शरीर स्वस्थ एवं सबल था और मन उत्साहसे भरा था। काम करनेका अभ्यास था। बात-की-बातमें उसने आठ-दस सेर गेहूँ पीसकर रख दिये। सासको जब इस बातका पता लगा तो वह दौड़ी हुई छोटी बहूके पास आयी और बोली—'बहू! यह आत्मकल्याणका कोई नया तरीका ढूँढ़ निकाला है क्या?' बहूने गद्गद स्वरमें कहा—'माताजी! जिठानियोंने रसोई बनानेका काम तो मुझसे वापस ले लिया। इसलिये मुझे आत्मकल्याणका यह दूसरा मार्ग ढूँढ़ना पड़ा। इसमें शारीरिक श्रम अधिक है। इसलिये जहाँ आध्यात्मिक लाभके लिये रसोईका काम करनेसे सालभरमें आत्माका कल्याण होता, वहाँ आटा पीसनेसे छः ही महीनोंमें काम बन जायगा। फिर इसमें दुहरा लाभ है। आत्माका कल्याण तो होता ही है, साथ-ही-साथ शारीरिक व्यायाम भी हो जाता है, जिससे शरीरमें फुर्ती और बल आता है तथा शरीर नीरोग

रहता है। इससे गर्भवती स्त्रियोंको प्रसव भी जल्दी और सुखपूर्वक होता है। घरवालोंको शुद्ध आटा मिलता है, जिससे उनके स्वास्थ्य और मन दोनोंपर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इन सब कारणोंसे यह काम मेरे लिये अत्यन्त श्रेयस्कर है। आशा है, आप मेरे इस काममें मेरी सहायता करेंगी।' अब तो सास अपनी छोटी बहूको गुरुवत् मानने लगी। उसकी एक-एक बात उसको सारगर्भित प्रतीत होने लगी। वह उसके प्रत्येक कार्यको गौरवकी दृष्टिसे देखने लगी और स्वयं भी उसीका अनुकरण करनेकी चेष्टा करने लगी। जहाँ छोटी बहूने पहले दिन सबेरे छः बजे आटा पीसनेका कार्य आरम्भ किया था, वहाँ सास दूसरे दिन पाँच ही बजे उस काममें जुट गयी। उसकी देखा-देखी तीसरे दिन उसकी दूसरी बहुओंने चार ही बजे उस कामको शुरू कर दिया। इस प्रकार पहले जहाँ वे सब-की-सब कामसे जी चुराती थीं। अब उन सबमें काम करनेकी होड़-सी होने लगी। सभी चाहती थीं कि मुझे अधिक-से-अधिक काम करनेके लिये मिले; क्योंकि सबको उसमें आत्मकल्याणके दर्शन होते थे। छोटी बहूकी यह दूसरी विजय थी।

अब छोटी बहूने कमरे साफ करने तथा कुएँसे पानी खींचकर लानेका काम अपने जिम्मे ले लिया। सबेरे नौकर झाड़ू लगाने तथा पानी भरने आता तो उससे पहले ही यह सारा काम स्वयं कर लेती। सासने उससे फिर पूछा—'बेटी ! इस कामके करनेमें तुम्हारा क्या अभिप्राय है ?' छोटी बहूने बड़े ही मधुर स्वरोंमें कहा—'माताजी ! आपको इन सब बातोंका भेद बतला देनेसे सेवासे वञ्चित होना पड़ता है ! इसलिये अब मैं इसका रहस्य आपको नहीं बतलाना चाहती। इस अविनयके लिये आप मुझे क्षमा करें।' सासने कहा—'बेटी ! अब मैं तेरे कार्यमें बाधा नहीं डालूँगी। तू मुझे इसका आध्यात्मिक रहस्य समझा दे।' बहूने कहा—'सासजी ! जहाँ रसोईका काम करनेसे सालभरमें और आटा पीसनेका काम करनेसे छः महीनोंमें आत्मकल्याण होता, वहाँ पानी भरनेकी सेवासे तीन ही महीनोंमें

काम बन जायगा; क्योंकि यह काम उन सबकी अपेक्षा अधिक कठिन है। इसमें श्रम एवं कष्ट अधिक है तथा जानकी भी जोखिम है।' फिर क्या था, सास भी उसके इस काममें हाथ बँटाने लगी। दोनोंका उसमें साझा हो गया। दूसरी बहुओंने यह देखकर साससे कहा—'आपकी अवस्था अब पानी भरने लायक नहीं है। इसलिये यह काम आपको नहीं करना चाहिये।' इसपर सासने उन्हें उत्तर दिया—'क्या मुझे आत्मकल्याण नहीं चाहिये ? मैं वृद्धा हूँ, इसलिये मुझे तो जल्दी-से-जल्दी आत्माका कल्याण कर लेना चाहिये।' फिर क्या था, दूसरी बहुएँ भी इस काममें शामिल हो गयीं। अब छोटी बहूने बरतन माँजनेका काम अपने जिम्मे लिया। सासने इसपर आपत्ति की। वह बोली—'इससे तुम्हारे कपड़े खराब होंगे और आभूषण घिस जायँगे। इस प्रकार महीनेमें जहाँ तुम नौकरकी मजदूरीके पाँच रुपये बचाओगी, वहाँ उसके बदलेमें तुम्हारा दस रुपयोंका नुकसान हो जायगा।' इसपर बहूने कहा—'माना कि ऐसा करनेसे आर्थिक लाभकी अपेक्षा हानि ही अधिक होगी; किन्तु मेरे कपड़े चाहे मैले हो जायँ, मेरा अन्तःकरण तो इससे बहुत जल्दी शुद्ध होगा। बात यह है कि जो काम जितना कठिन और लौकिक दृष्टिसे जितना नीचा होता है, आध्यात्मिक दृष्टिसे वह उतना ही ऊँचा और कल्याणकारक होता है। बरतन माँजनेसे मुझे विश्वास है कि दो ही महीनोंमें मेरा कल्याण हो जायगा। और यदि कभी भगवान् ऐसा संयोग भेज दें, जब किसी रोगीकी टट्टी-पेशाब उठाना पड़े, तब तो एक ही महीनेमें कल्याण निश्चित है। अवश्य ही भाव हमारा ऊँचे-से-ऊँचा—पूर्ण निष्कामताका होना चाहिये।'

सासकी तो छोटी बहूके वाक्योंमें अब वेदवाक्योंके समान श्रद्धा हो गयी थी। वह भी बरतन माँजनेके काममें उसे सहयोग देने लगी। अन्य बहुओंने उसे मना किया। उसने कहा—'अपने लड़कोंके बर्तन तो मैं अवश्य ही माँज सकती हूँ। फिर वृद्धावस्थाके कारण मेरा आत्मकल्याणके साधनमें सबसे अधिक अधिकार है। इसलिये इस विषयमें तुम्हारा आग्रह

नहीं माना जा सकता।' फिर तो सब-की-सब बहुएँ उसी काममें जुट गयीं। सब काम बड़े उत्साहसे होने लगे। काम-काजकी जो पारी बाँधी गयी थी, वह टूट गयी। जो मौका पाती, वही आगे-से-आगे काम करनेको तैयार रहती। सबमें परस्पर प्रेम और सद्भावकी स्थापना हो गयी। जिस घरमें कलह और अशान्तिका एकच्छत्र साम्राज्य था, वही अब सुख-शान्तिका निकेतन हो गया। जो लोग यहाँकी स्त्रियोंको लड़ते-झगड़ते देखकर हँसते थे, वे ही उनका आदर्श व्यवहार देखकर आश्चर्य करने लगे। शहरके लोग दर्शकरूपसे उन लोगोंका व्यवहार देखनेके लिये आने लगे। स्त्रियोंके इस आदर्श व्यवहारका पुरुषोंपर भी कम प्रभाव नहीं पड़ा। इनकी देखा-देखी वे सब भी आलसी हो चले थे। अब इनका आदर्श व्यवहार देखकर वे सब भी कर्तव्यपरायण हो गये। जहाँ पहले दूकानका काम प्रायः चढ़ा रहता था, वहाँ अब कामकी अपेक्षा काम करनेवाले अधिक हो गये। जहाँ उनमें पहले कामसे जी चुरानेके कारण झगड़ा होता था, वहाँ अब वे सब-के-सब एक-दूसरेका काम छीनकर करने लगे। जहाँ पहली लड़ाई नरकोंमें ले जानेवाली थी, वहाँ यह दूसरी लड़ाई कल्याण करनेवाली थी। कहना न होगा कि यह सब परिवर्तन छोटी बहूके सद्भाव, सद्विचार और सच्चेष्टाओंका सत्फल था। जिस प्रकार एक मछली सारे तालाबको निर्मल कर देती है, उसी प्रकार एक ही महान् एवं पवित्र आत्मा घरभरका ही नहीं, मुहल्ले, गाँव और नगरभरका सुधार कर देती है। सङ्गकी ऐसी ही महिमा है। सभी माता-बहिनोंको इस आख्यायिकासे शिक्षा लेकर आत्माके कल्याणके लिये निष्कामभावसे दूसरोंकी सेवाका व्रत ले लेना चाहिये। ऐसी सेवा बहुत शीघ्र मुक्तिका कारण बन जाती है—

'स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्।'

(गीता २।४०)

श्रीमद्भगवद्गीतामें ऐसे अनेकों वाक्य मिलते हैं, जिनसे इस बातकी पुष्टि होती है। श्रीभगवान् कहते हैं—

युक्तः कर्मफलं त्यक्त्वा शान्तिमाप्नोति नैष्ठिकीम्।

(५।१२)

'कर्मयोगी कर्मोंके फलको परमेश्वरके अर्पण करके भगवत्प्राप्तिरूप शान्तिको प्राप्त होता है।'

असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पूरुषः।

(३।१९)

'आसक्तिसे रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है।'

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम्॥

(१८।५६)

'मेरे परायण हुआ कर्मयोगी तो सम्पूर्ण कर्मोंको सदा करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।'

नाम-कीर्तनसे शत्रुपर विजय

राजा गोपालसिंहका भगवान्‌में अद्भुत विश्वास

पूर्वजोंका संक्षिप्त परिचय

वि० सं० ७७५ के लगभगकी बात है। एक क्षत्रिय युवक अपनी पत्नीको साथ लेकर श्रीजगन्नाथजीके दर्शनार्थ पुरी जा रहे थे। पत्नी गर्भवती थी। उस समय मोटर, रेलगाड़ी आदि सवारियाँ थीं नहीं, अतः वे धीरे-धीरे पैदल ही यात्रा कर रहे थे; रात्रिके समय जब वे कोतुलपुर थानाके अधीन लाउग्राममें पहुँचे, तब वहाँ उन्होंने विश्राम करनेके लिये एक गृहस्थका दरवाजा खटखटाया। गृहस्थने उनका इतना बड़ा सत्कार किया, मानो कोई बहुत पुराना मित्र आया हो और वे उसके आनेकी आशासे इतनी राततक प्रतीक्षामें बैठे हों। उसी रात्रिमें क्षत्रिय युवककी पत्नीने एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न किया। यही शिशु आगे चलकर मल्लराज्यका आदि संस्थापक हुआ; इसीसे इसे 'आदिमल्ल' कहते थे। आदिमल्लने जिनके घर जन्म ग्रहण किया, वे भी क्षत्रिय थे। उनकी उपाधि थी मल्ल। इसलिये इन राजाओंकी उपाधि 'मल्ल' और इनके राज्यका नाम 'मल्लभूमि' हुआ।

इस शिशुके जन्मके तीन दिन बाद ही इसके पिता जगन्नाथपुरी चले गये और उन्होंने वहीं शरीर त्याग कर दिया। शिशुकी माताका भी बीस दिन बाद लाउग्राममें ही देहान्त हो गया। अतः लाउग्रामके उस आश्रयदाता दम्पतिने ही शिशुका पालन-पोषण किया। उसका नाम रखा गया रघुनाथ। रघुनाथके पालक पिताकी आर्थिक अवस्था अच्छी नहीं थी, इसलिये रघुनाथ बालक-अवस्थामें ही गाँवके पण्डित मनोहर पञ्चाननकी पाठशालामें पढ़ने चला गया और वेतनके बदले उनकी गायें चराने लगा। रघुनाथकी बुद्धि तीव्र थी, यह देखकर सभी कहते कि यह लड़का होनहार होगा। थोड़े ही दिनोंमें उसने पाठशालाकी पढ़ाई समाप्त कर दी।

एक दिन रघुनाथ पण्डित पञ्चानन महाशयकी गायें चराने खेत गया था; किंतु जब दोपहरतक घर नहीं लौटा, तब पण्डितजीको बड़ी चिन्ता हुई। वे उसकी खोजमें निकले। खोजते-खोजते उन्होंने श्रान्त रघुनाथको एक बरगदके पेड़की छायामें सोये देखा। उसके मुखपर पत्तोंके भीतरसे आकर धूप लग रही थी। उससे बचानेके लिये एक बड़ा भारी विषधर साँप उसके सिरहाने फनको छत्रकी तरह फैलाये बैठा था। यह देखकर पण्डितजीको बड़ा विस्मय हुआ और वे तुरंत समझ गये कि यह बालक साधारण मनुष्य नहीं, कोई महापुरुष है। कुछ देर बाद साँप चला गया और पञ्चानन पण्डित रघुनाथको लेकर घर लौटे।

कुछ समय बाद लाउग्रामके राजाकी मृत्युके अनन्तर ये रघुनाथ ही वहाँके राजा बनाये गये। तबसे मल्लराज्यका आरम्भ हुआ। रघुनाथके मरनेपर उनके पुत्र जयमल्ल राजा हुए। वे प्रद्युम्नपुरको जीतकर अपनी राजधानी लाउग्रामसे वहाँ ले आये। प्रद्युम्नपुरमें एक-के-बाद-एक राजा होते गये। बारहवीं पीढ़ीमें खड्गमल्ल हुए, जिन्होंने वर्तमान खड्गपुरको जीता और उसका नाम खड्गपुर रखा। तत्पश्चात् उन्नीसवें राजा जगत्मल्ल हुए। उन्होंने पासके वनमें नयी राजधानी स्थापित की। अपने कुलदेवताके नामपर उसका नाम 'विष्णुपुर' रखा और वे वहीं आकर रहने लगे।

मल्ल हम्बीरकी वीरता और वैष्णवता

शताब्दियाँ बीत गयीं। एकके-बाद-एक राजा होते गये। हरेक राजा अपने इच्छानुसार राजधानीकी उन्नतिकी चेष्टा करते थे। जिस समय दिल्लीके सिंहासनपर बादशाह अकबर विराज रहे थे, उस समय मल्लभूमिके राजा मल्ल हम्बीर थे। मल्लराजाओंमें वीर हम्बीर सर्वप्रधान राजा हुए। वे जैसे साहसी थे, वैसे ही विद्वान् और राज्य-संचालनमें सुदक्ष थे। इन्होंने मुसलमान आक्रमणकारियोंसे राजधानीको सुरक्षित रखनेके लिये दो दुर्ग बनाये थे।

इन्हीं वीर हम्बीरके समय पठानसेनापति दाउदखाँने विष्णुपुरपर

आक्रमण किया। भयानक युद्ध हुआ। मल्लसेनाने प्रबल पराक्रमके साथ युद्ध किया और अन्तमें दाउदखाँको बुरी तरह पराजित होकर भागना पड़ा। इस युद्धमें पठानोंकी सेनाके इतने आदमी मरे कि युद्धस्थल सैनिकोंके मुण्डोंसे भर गया। इसीसे उस स्थानका नाम 'मुण्डमालाघाट' पड़ा। यह स्थान वर्तमानमें विष्णुपुरसे तीन मीलपर नदीके किनारे स्थित है। वहाँ दुर्गका ध्वंसावशेष अब भी दिखायी पड़ता है। कई वर्ष हुए, बाढ़के प्रवाहमें मिट्टी बह जानेसे एक बड़ी तोप मिट्टीके नीचेसे निकली थी, वही तोप इस समय विष्णुपुरकी फौजदारी अदालतके सामने रखी है।

वीर हम्बीर बड़े ही योद्धा और विष्णुभक्त थे। वीर हम्बीरके समयसे ही मल्लवंशीय राजाओंने वैष्णवधर्मकी दीक्षा लेनी शुरू की और वैष्णवधर्मके प्रचारार्थ वे इच्छानुसार खर्च करने लगे। राजा वीर हम्बीर अपने प्रारम्भिक जीवनमें वैष्णवधर्मके सम्बन्धमें विशेष नहीं जानते थे। एक बार वृन्दावनसे श्रीजीवगोस्वामी और श्रीकृष्णदास कविराज आदि वैष्णवोंने आचार्य श्रीनिवास, नरोत्तमदास और श्यामानन्द—इन तीन वैष्णवोंके साथ बहुत-से वैष्णवग्रन्थ तीन-चार बैलगाड़ियोंपर लादकर गौड़ देशमें भेजे थे। रास्ता बहुत दूरका था। तीनों गोस्वामी मार्गके कष्ट सहते हुए अपने देश जा रहे थे। मार्गमें जब वे रघुनाथपुर मलिआड़ा पार करके गोपालपुरमें पहुँचे, तब उन्होंने बैलोंको खोल दिया और स्वयं विश्राम करने लगे। उन्हें गहरी नींद आ गयी। तब विष्णुपुरके राजसैनिक गाड़ियोंपर बहुमूल्य चीजें समझकर उनको वहाँसे धीरे-धीरे विष्णुपुर ले गये।

इधर नींदसे जगकर गोस्वामियोंने जब बैलगाड़ियों और पुस्तकोंको न देखा, तब वे बहुत व्याकुल हो गये। श्रीनिवास तो पागलकी तरह फटा-मैला कपड़ा पहने ग्रन्थोंकी खोजमें इस गाँवसे उस गाँव चक्कर लगाने लगे। दो गोस्वामी तो हताश होकर वृन्दावन लौट गये, परंतु श्रीनिवास वन-वन और गाँव-गाँव घूमते हुए एक दिन विष्णुपुरसे चार मील दूर देवलीग्राममें आये। वहाँ श्रीकृष्ण-वल्लभ चक्रवर्ती महाशयसे इनकी भेंट हुई। चक्रवर्ती

महाशयने बातचीतमें इनका सारा वृत्तान्त जान लिया। उन्होंने श्रीनिवासको आश्वासन देकर कहा—'आप इसके लिये कोई चिन्ता न करें। हमारे राजा परम दयालु और धार्मिक हैं। उनसे सब बातें स्पष्ट कह देनेपर वे निश्चय ही इसकी व्यवस्था कर देंगे।'

तदनन्तर एक दिन चक्रवर्ती महाशय श्रीनिवासको साथ लेकर राजदरबारमें गये। उस समय वहाँ बड़े समारोहके साथ श्रीमद्भागवतकी कथा हो रही थी। कथावाचक थे राजपण्डित व्यास चक्रवर्ती। वे रासपञ्चाध्यायीका अर्थ कर रहे थे; किंतु उनका अर्थ ठीक नहीं था। इसलिये आचार्य श्रीनिवासके साथ उनका विवाद छिड़ गया। श्रोताओं तथा राजाने भी श्रीनिवास महाशयसे कथा कहनेके लिये विनयपूर्वक प्रार्थना की। श्रीनिवास बेचारे क्या करते, उनको बाध्य होकर कथा सुनानी पड़ी। वे भागवतके प्रत्येक श्लोकका अर्थ करके ऐसी मधुर भाषामें सबको समझाने लगे कि श्रोता मुग्ध हो गये। राजा, मन्त्री, सभासद—सभी कथा सुनकर आनन्दित हुए। राजाने अतिशय भक्तिके साथ श्रीनिवासको प्रणाम किया और उनकी चरणरज मस्तकपर लगाकर परिचय पूछा। श्रीनिवासने परिचयके साथ ही राजदरबारमें उपस्थित होनेका कारण भी बतलाया।

श्रीनिवास आचार्यकी बात सुनकर राजा अपने बुरे कामके लिये पश्चात्ताप करने लगे तथा हाथ जोड़कर उनसे बोले—'महाराज! सचमुच हमारा यह बहुत बड़ा भाग्य था कि हमने गाड़ीसहित आपकी पुस्तकोंको यहाँ रखा, नहीं तो आप-जैसे महापुरुष मेरे दरबारमें क्यों आने लगे। आपके श्रीचरणोंको देखकर मैं धन्य हो गया, मेरा वंश और पुरी धन्य हो गयी। अब इस अधमके अपराधोंको क्षमा करें। आपके वे ग्रन्थ सुरक्षित हैं, उन्हें ले लें और मेरे अपराधका जो दण्ड देना हो दें।' यों कहकर राजा श्रीनिवासके चरणोंमें लोट पड़े। आचार्य श्रीनिवासको दया आ गयी। उन्होंने राजाको सान्त्वना दी और बादमें आषाढ़ मासकी कृष्णा तृतीयाको उनको श्रीराधाकृष्णमन्त्रकी दीक्षा दी। तबसे मल्लभूमिके राजा वैष्णवधर्मकी दीक्षा ग्रहण करने लगे।

राजा वीर हम्बीर परम वैष्णव थे। राजाके अनुरोधसे आचार्य श्रीनिवास कुछ दिन विष्णुपुर रहे। कुछ समय बाद राजा गुरुदेव श्रीनिवासको साथ लेकर वृन्दावन गये और वहाँके सब तीर्थोंमें घूम-फिरकर वापस राजधानी लौट आये। वृन्दावनसे आकर राजाने राजधानीको वैष्णवधर्मकी शिक्षाके अनुसार सजाना आरम्भ किया। बहुत धनराशि व्यय करके यमुना, कालिन्दी, श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड नामक चार तालाब बनवाये। विष्णुपुरके पास ही दो गाँवोंके नाम द्वारका और मथुरा रखे गये। यही सब देखकर वैष्णव कवि और साधुओंने विष्णुपुरको 'गुप्त वृन्दावन' कहा।

राजाने प्रसिद्ध कारीगरोंसे कालाचाँद (कृष्णचन्द्र) विग्रहकी एक मूर्ति बनवाकर बड़े समारोहके साथ उसकी प्रतिष्ठा करायी। वे अपने जीवनकालमें कालाचाँद-देवका मन्दिर न बनवा सके। बादमें उनके सुयोग्य पुत्र रघुनाथसिंहने मन्दिर-निर्माण करवाया। यह कालाचाँद-मन्दिर आज भी है। मन्दिरके ऊपर जो शिलालेख है, उसके अनुसार यह मन्दिर १६५६ ई० में तैयार किया गया था।

राजा रघुनाथका भगवत्प्रेम और श्रीमदनमोहनजीकी स्थापना

वीर हम्बीरकी मृत्युके बाद उनके पुत्र रघुनाथ वहाँके राजा हुए। ये भी पिताकी भाँति साहसी योद्धा और बुद्धिमान् थे। राजमहलके नवाब शाहशुजाने एक दिन किसी बहानेसे रघुनाथको अपने दरबारमें बुलाकर उन्हें बंदी कर लिया। अन्तमें उनके वीरत्व और साहसकी परीक्षाके लिये नवाबने अपने एक दुष्ट घोड़ेकी पीठपर चढ़ाकर दौड़ आनेकी रघुनाथको आज्ञा दी। घोड़ा बहुत ही उद्धत था, पर रघुनाथ बड़ी बहादुरीसे उसको वशमें रखे हुए दौड़ाकर वापस ले आये। इससे नवाब बहुत प्रसन्न हुए एवं रघुनाथको बन्धनमुक्त करके उनके साथ मित्रता की। नवाबने राजा रघुनाथके सम्मानमें उन्हें 'सिंह' की उपाधि दी। रघुनाथके समयसे ही मल्ल राजाओंकी उपाधि 'सिंह' हुई।

नवाबसे विदा लेकर राजा रघुनाथसिंह विष्णुपुरकी ओर चले।

चलते-चलते वे एक गाँवमें पहुँचे। वे पूरे वैष्णव थे; ब्राह्मणके सिवा अन्य किसीके घर नहीं खाते थे एवं विष्णुका चरणोदक और तुलसी लिये बिना जल ग्रहण नहीं करते थे। पता लगाकर वे धरणीधर नामक ब्राह्मणके अतिथि हुए। धरणीधर अत्यन्त ही गरीब थे। फिर भी उन्होंने बहुत यत्न करके रघुनाथको घरपर रखा और जो कुछ पत्र-पुष्प मिल सका, उसीसे रघुनाथका आदर-सत्कार किया और भोजन कराया। गरीब होनेपर भी ब्राह्मण बड़े धार्मिक थे; कभी अन्याय नहीं करते और झूठ नहीं बोलते थे। ब्राह्मणके घरमें भगवान् श्रीराधाकृष्णकी मूर्ति थी, नाम था मदनमोहनजी। मदनमोहनजीके अद्भुत अपूर्व रूपको देखकर राजा मुग्ध हो गये। उन्होंने ब्राह्मणसे दस हजार रुपये लेकर मदनमोहनको देनेका प्रस्ताव किया। रुपयोंके बदले मदनमोहनको देना होगा—यह सोचकर ब्राह्मण व्याकुल होकर रोने लगे। छोटे बालककी तरह रोते-रोते उन्होंने कहा—'नहीं, तुम चाहे जितने रुपये दो, मैं अपने भगवान्‌को तुम्हें नहीं दे सकता।'

रात्रिमें मन्दिरमें सोते हुए रघुनाथको भगवान्‌का स्वप्नादेश हुआ और तदनुसार उन्होंने चुपचाप मदनमोहनजीको अपनी गोदमें उठा लिया और उन्हें चद्दरसे ढककर वे घरसे निकल पड़े। उनके हाथ, पैर और हृदय काँप रहे थे। राजाने अपने जीवनमें कभी इस तरहका काम नहीं किया था, इसीसे उनका सारा शरीर काँप रहा था। क्या करें, इष्टदेवका आदेश था। वे धीरे-धीरे घरके किवाड़ बंद करके चल दिये। दो-तीन दिनों बाद वे विष्णुपुर पहुँचे। रानीसे मदनमोहनकी सारी बातें बतलाकर अन्तःपुरके एक कोनेमें श्रीमदनमोहनजीको छिपाकर पधरा दिया।

ब्राह्मण धरणीधर सबेरे जगे और नित्यकी भाँति फूल तोड़ने चले गये। लौटकर जब मन्दिरके किवाड़ खोले, तब देखा कि वहाँ न तो भगवान् श्रीमदनमोहनजी हैं और न राजा रघुनाथ ही हैं। ब्राह्मण बहुत दुःखी हुए और सिर पीटकर रोने लगे। उन्हें निश्चय हो गया कि रघुनाथ ही मदनमोहनजीको लेकर भाग गये हैं। यह सोचकर ब्राह्मण जिस अवस्थामें थे, उसी अवस्थामें

शोकसे व्याकुल होकर रघुनाथ और मदनमोहनजीकी खोजमें घरसे निकल पड़े। धरणीधर ब्राह्मण अनेक जगह घूमते-घामते अन्तमें एक दिन विष्णुपुर पहुँचे। वहाँ वे करीब एक मासतक घर-घर भटके, पर कहीं श्रीमदनमोहनजीका पता न चला। तब वे प्राणत्यागका विचार करके नदी-तटपर पहुँचे।

वहाँ एक बुढ़ियाने उन्हें नदीमें कूदनेसे रोका और उनसे सारी बातें जानकर कहा—'यह किसीसे कहना नहीं, यहाँके राजा रघुनाथसिंह कहींसे एक भगवान्‌को लाये हैं और उनको अन्तःपुरके किसी गुप्त स्थानमें छिपा रखा गया है, यह मैंने सुना है। वहाँ जाकर पता लगाओ, वही तुम्हारे मदनमोहन हैं कि नहीं।'

वृद्धाकी बातें सुनकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुए और राजाके दरबारमें उपस्थित हुए। राजाने ब्राह्मणको पहचान लिया तथा उनका श्रद्धाभक्तिपूर्वक बहुत आदर-सत्कार करके धन-रत्न आदि जो भी वे लेना चाहें, देनेको कहा। ब्राह्मण रोते-रोते बोले—'राजन्! मैं गरीब हूँ और गरीब ही रहना चाहता हूँ, धन-दौलत लेकर भी क्या करूँगा। इनकी मुझे आवश्यकता नहीं है। आप मेरे भगवान् मदनमोहनको ले आये हैं, उनको मुझे लौटा दीजिये। मैं आपके पैरों पड़ता हूँ। मैं भगवान्‌को अपनी आँखों देखना चाहता हूँ, कृपया एक बार मुझे मेरे भगवान्‌को दिखला दीजिये।' राजा बड़ी चिन्तामें पड़े। उन्होंने कोई उपाय न देखकर ब्राह्मणसे कहा—'आप दया करके यहाँ कुछ दिन विराजिये। आजसे तीन दिन बाद मैं आपको मदनमोहनजीके दर्शन करा दूँगा।' ब्राह्मणको राजाके वचनोंसे बड़ा आनन्द हुआ, उन्होंने दोनों हाथ उठाकर राजाको आशीर्वाद दिया।

एक दिनकी बात है, रातमें ब्राह्मणने स्वप्न देखा, मानो उनके मदनमोहन उनके सिरपर हाथ फिराते हुए कह रहे हैं—'मैं तुम्हारी भक्तिसे संतुष्ट हो गया। तुम दुःख मत करो, घर लौट जाओ। यहाँका यह राजा भी मेरी बड़ी भक्ति करता है, मेरे लिये यह सब राजपाट भूल गया है, इसकी भक्तिसे मैं

बँध गया हूँ; इसलिये मैं अब यहीं रहूँगा। पर तुम्हारे यहाँ मैं प्रतिदिन जाऊँगा और प्रतिदिन ही तुम मुझे देखोगे। मैं सिंहासनपर प्रतिदिन इमलीके फूलके काँटे रख आऊँगा। उनको देखकर तुम समझ जाओगे कि मैं रोज ही आता हूँ।'

सबेरा होते ही ब्राह्मणको बुलाने राजा स्वयं गये और ब्राह्मणसे विनयपूर्वक बोले—'ब्रह्मन्! आप मेरा कोई अपराध न मानें; मेरे साथ पधारें, मैं आपको मदनमोहनजीके दर्शन करा देता हूँ। इसके बाद आप जैसा ठीक समझें, करें।' राजाकी बात सुनकर धरणीधरके आनन्दकी सीमा न रही। वे राजा रघुनाथसिंहके पीछे-पीछे चलने लगे। अन्तःपुरमें जाकर धरणीधरने मदनमोहनजीके दर्शन किये और दर्शन करते ही वे बेसुध-से हो गये, उनमें बोलनेकी शक्ति नहीं रही। नेत्रोंसे जलधारा प्रवाहित होने लगी, जिससे उनका सारा वक्षःस्थल भीग गया। वे एकटक भगवान्‌की ओर ही देखते रहे। भगवान् मदनमोहनजीका विग्रह बड़ा ही चित्ताकर्षक और सर्वविध सुसज्जित था। राजा रघुनाथसिंह मदनमोहनजीको विष्णुपुरमें लानेके बाद सब काम छोड़कर भगवान्‌के पास ही रहते और उन्हें बहुमूल्य पदार्थोंसे विविध भाँतिसे सजाते रहते थे। ब्राह्मण धरणीधर आश्चर्यचकित होकर भगवान्‌के विग्रहका दर्शन करते रहे। उनकी आँखोंकी पलकें नहीं पड़ती थीं। फिर बहुत देरतक उन्होंने भक्तिभावपूर्वक प्रणाम और स्तवन किया।

राजाने ब्राह्मणसे बहुत प्रार्थना की, पैर पकड़े, हाथ जोड़कर अनुरोध किया कि आप विष्णुपुरमें रहिये। उन्होंने जमीन देनी चाही, घर बनवा देना चाहा, यहाँतक कि मदनमोहन भगवान्‌की पूजा-अर्चनाका भार देना चाहा; परंतु ब्राह्मण किसी तरह भी विष्णुपुर रहनेके लिये राजी नहीं हुए। हाथ जोड़कर बार-बार भगवान्‌को प्रणाम किया और स्वप्नादेशको याद करके भगवान्‌को विष्णुपुरमें ही छोड़कर भगवान्‌की ओर देखते-देखते वे चले गये।

एक बार रथयात्रा-महोत्सवके समय सैकड़ों हाथी और घोड़े जोड़ने

तथा श्रद्धाभक्तिपूर्वक प्रार्थना करनेपर भी श्रीमदनमोहनजीका रथ नहीं चला। कारण यह था कि एक बुढ़िया वीरसिंहपुरसे रथयात्राके दर्शनार्थ आ रही थी, वह थककर रास्तेमें गिर पड़ी। उसको दर्शन दिये बिना रथ आगे नहीं बढ़ता था। आखिर उसे पालकीमें बैठाकर लाया गया, तब रथ चला।

'राजा गोपालसिंहकी बेगार'

इन्हीं भक्त रघुनाथके पवित्र वंशमें कुछ पीढ़ियोंके बाद सन् १७१२ ई० में गोपालसिंह राजा हुए। वे परम वैष्णव थे। दिन-रात केवल भगवन्नामका जप किया करते, राजकार्यसे उदासीन-से रहते और हरिनाममाला हाथमें लिये भक्तोंके साथ धर्मचर्चा करते तथा वैष्णवग्रन्थ पढ़ते रहते। रास्तेमें कहीं किन्हीं वैष्णव साधु-संन्यासीको देखते तो उन्हें दरबारमें ले आते और बड़े भक्तिभावसे उनकी सेवा-पूजा करते। भक्त राजा गोपालसिंहने अनेकों वैष्णवोंको बहुत-सी करहीन भूमि दान की थी; उन सब वैष्णवोंके वंशधर विष्णुपुरमें आज भी उसे भोग रहे हैं।

एक बार राजाने आज्ञा दी कि 'राजदरबारके प्रत्येक कर्मचारीको प्रतिदिन कम-से-कम एक बार समयानुसार हरिनामकी माला जपनी पड़ेगी। जो नहीं जपेगा, उसे दण्ड दिया जायगा।' सब माला मँगाकर नित्य जपने लगे। कुछ दिनों बाद अन्तःपुरकी सेविकाओं तथा महिलाओंने भी प्रतिदिन माला जपनी शुरू कर दी। उसके बाद एक दिन राजाने यह आदेश दिया कि 'राजधानी विष्णुपुरके प्रत्येक व्यक्तिको प्रतिदिन माला जपनी पड़ेगी। बूढ़े, युवक, बालक, बालिका, स्त्री सभीको दिनमें कम-से-कम एक बार माला अवश्य जपनी ही होगी।' राजाकी आज्ञा थी, बाध्य होकर सब लोग भगवन्नाम जपने लगे। दिनमें कम-से-कम एक बार सभीको हरिनामकी माला लेकर बैठना पड़ता था। बहानाबाजी करके बचनेका कोई रास्ता न था; क्योंकि प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन माला जपता है या नहीं, यह जाननेके लिये राजाने बहुत-से गुप्तचर नियुक्त कर रखे थे और स्वयं राजा भी समय-समयपर छिपे वेषमें घूम-घूमकर देखा करते थे। समय-असमयका

कोई हिसाब नहीं था, जिस किसी समय भी दिनमें एक बार माला जपनी थी, क्योंकि राजाने माला जपनेका समय निश्चित नहीं किया था। लोग भोजन करने जाते, परंतु रसोई होनेमें या परसनेमें कुछ देर होती तो उसी समय हाथमें माला लेकर बाहर बैठ जाते और जप करने लगते। राजा गोपालसिंहजीका यह कार्य वस्तुतः बहुत ही स्तुत्य था। सच्चा हितैषी बन्धु तो वही है, जो किसी प्रकार भी अपने आत्मीयको भगवान्‌में लगा दे—

तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रानतें प्यारो।
जाते होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥

यह लोगोंको 'गला पकड़कर अमृत पिलाना' था, परंतु कुछ लोग इससे नाराज हो गये और वे इसे 'गोपालसिंहकी बेगार' कहने लगे। * आगे चलकर यह एक साधारण कहावत हो गयी। बाँकुड़ा और विष्णुपुरके आसपास आज भी इसका प्रचार है। जब कोई काम करनेके बाद अपनी मजदूरी या लाभ नहीं पाता, तब उस काम करनेको वह 'गोपालकी बेगार' कह देता है। जो काम करनेसे जी चुराता है, उसे उसका मालिक कह देता है कि 'तू तो 'गोपालकी बेगार' काट रहा है।'

विष्णुपुरपर आक्रमण और सामुदायिक कीर्तन

मराठासेनापति भास्कर पण्डित बहुत दिनोंसे मल्लराज्यपर आक्रमण करनेका सुयोग देख रहे थे, परंतु मल्लसैनिकोंकी शक्ति और युद्धकौशल

---

* कुछ लोग गोपालसिंहके इस कार्यको अन्याय और अत्याचार बतलाते हैं, उन्हें देखना चाहिये कि आज क्या हो रहा है। जबरदस्ती भगवान्‌का नाम छुड़ाया जा रहा है। मानो अमृतका प्याला छीनकर, गला पकड़कर जबरन् विष पिलाया जा रहा है! रूस-जैसे देशमें भगवान्‌की सत्ता माननेवालोंको दण्ड देनेका विधान बनाया गया था। यहाँ भारतकी संसदमें भगवान्‌का स्मरण करके काम शुरू करनेका प्रस्ताव गिर गया। प्रजाको ईश्वरके माननेसे बलपूर्वक रोकना 'एक दल' का सिद्धान्त है। पर इन लोगोंको आज लोग बुरा नहीं कहते, लेकिन जो भगवान्‌की ओर लगानेमें बलपूर्वक काम लेता है, उसे अत्याचारी बताया जाता है। कैसी विडम्बना है!

देखकर उन्हें आक्रमण करनेका साहस नहीं होता था; किंतु गोपालसिंहको राज्यसंचालनमें उदासीन सुनकर भास्कर पण्डितने मल्लराज्यपर आक्रमण करनेका अच्छा अवसर समझा और बड़ी भारी सेना लेकर उन्होंने मल्लराज्यपर चढ़ाई कर दी।

मल्लराज गोपालसिंहके सेनापतियोंको मराठोंकी इस चढ़ाईका कुछ भी पता न चला। उस ओर किसीका ध्यान भी नहीं था। मराठोंकी सेना मुण्डमालाघाटपर आकर डट गयी। वहाँ एक दुर्ग था, जिसपर बहुत-सी तोपें सजायी हुई थीं। पुरानी व्यवस्थाके अनुसार मल्लराज्यमें पैर रखनेके पहले शत्रुको या तो इस दुर्गपर अधिकार करना पड़ता था या पराजय स्वीकार करके भागना पड़ता था। मराठासैनिक मुर्शिदाबाद, ढाका और मल्लराज्यके अनेक ग्रामोंको लूटकर विष्णुपुर आये थे।

उस समय दोपहरका समय था; किंतु सेनापतिके आदेशसे एक दल सैनिक तुरंत दौड़कर दुर्गके निकट पहुँच गया। पर दुर्गपर बहुत-सी तोपें सजी देखकर उसे बड़ा भय हुआ और उसके आगे बढ़नेकी चाल मन्द पड़ गयी। मराठासेनापति भास्कर पण्डितके सौभाग्यसे उस समय दुर्गमें सैनिकोंमेंसे कोई न था। दुर्गके सैनिक इच्छानुसार जहाँ-तहाँ स्वच्छन्द विचरा करते थे, नहीं तो, भास्कर पण्डितको वहीं पराजय स्वीकार करनी पड़ती। मराठासैनिक और आगे बढ़े। इसी समय दुर्गके एक तोपचालकने उनको देख लिया। उसने तत्काल दुर्गके भीतर जाकर तोपें दागनी आरम्भ कर दीं। तोपोंकी आवाज सुनकर मल्लराज्यके अन्य सैनिक भी दौड़ आये और तोपें दागने लगे। तोपोंके मुँहसे गोले बरसने लगे और मराठा-सैनिक मरने लगे। दुर्गमें केवल पंद्रह सैनिक थे, उन्होंने देखा कि अत्यन्त समीप आ जानेके कारण मराठासैनिकोंपर गोलोंकी मार ठीक नहीं पड़ रही है, तब उन्होंने बंदूकें चलाना शुरू किया और एक आदमीने दौड़कर सेनापतिको सूचना दी।

राजा गोपालसिंहने मराठासेनापति भास्कर पण्डितके आक्रमणकी बात सुनकर सेनाकी एक टुकड़ी मुण्डमालाघाटकी ओर भेजी। भयङ्कर युद्ध छिड़

गया। मल्लसेना संख्यामें कम थी, पर वह प्राणपणसे लड़ने लगी। मराठोंके भी बहुत सैनिक मरे; परंतु अन्तमें उन्होंने दुर्गपर अधिकार कर लिया, तब शेष मल्लसेना धीरे-धीरे हटकर राजदरबारमें आ गयी।

युद्धमें विजय पाकर भास्कर पण्डित आनन्दित हो विष्णुपुरकी ओर बढ़ने लगे। बीचमें रात हो जानेके कारण सेनापतिने रास्तेके पास ही पड़ाव डाल दिया। इस समय विष्णुपुरमें जहाँ फौजदारी और दीवानी अदालत है, वहीं भास्कर पण्डितने छावनी डाली थी, इससे अब भी उस जगहका नाम 'मराठाडाँगा' है।

गढ़की सेनाने भागकर राजाको सूचना दी। मराठे राजधानीकी ओर आ रहे हैं, यह जानकर राजाने प्रजाको आदेश दिया कि 'सब लोग अपनी धन-सम्पत्ति और परिवारको लेकर भीतरी दुर्गके अंदर चले आवें।' प्रजा भयभीत हो गयी। जिसके पास जो कुछ था, लेकर बाल-बच्चोंसहित सबने दुर्गमें आश्रय लिया। कुछ लोग धन-सम्पत्तिको वहीं छोड़कर केवल अपने प्राण बचानेके लिये ही दुर्गमें दौड़ आये!

अपनी सेनाकी पराजयकी बात सुनकर राजा गोपालसिंहने सोचा कि 'अब कोई उपाय नहीं है।' तब उन्होंने विश्वासपूर्वक दुर्गमें सबको हरिनाम-कीर्तन करनेकी आज्ञा दी। यद्यपि उस समय भी गढ़में चालीस हजार शिक्षित सेना मौजूद थी और उसको परास्त करना मराठासेनापति भास्कर पण्डितके लिये सीधा काम न था, पर राजाने यह सब कुछ नहीं सोचा। उन्होंने राजधानीके सब लोगोंके साथ हरिनाम-कीर्तन करना आरम्भ कर दिया। हरिनामकी तुमुल ध्वनिसे गढ़ गूँज उठा। भास्कर पण्डितकी थकी सेना रात्रिमें विश्राम करने लगी।

पर मल्लसेनापति निश्चिन्त नहीं थे। राज्यमें एक सन्थालीसेना थी; वे लोग बहुत विश्वासी और साहसी थे। अन्तःपुरकी रक्षामें चारों ओर उनको नियुक्त कर दिया गया। मल्लसेनापतियोंने प्रतिज्ञा की कि 'प्राण भले ही चले जायँ, मराठोंको गढ़की ओर एक पैर भी नहीं बढ़ने दिया जायगा।' इसी

उद्देश्यसे उन्होंने राजाकी आज्ञाकी कोई प्रतीक्षा न करके मल्लभूमिकी स्वाधीनता-रक्षाके लिये रातोंरात गढ़के चारों ओर सेना सजा दी और बड़ी तोपोंको बारूद भरकर तैयार कर लिया। धनभण्डारको राजप्रासादके गुप्त स्थानोंमें छिपाकर रख दिया गया। राजाको इन सब बातोंका कुछ भी पता न था, वे तो गढ़में प्रजाके साथ मिलकर जोरोंसे केवल हरिनाम-कीर्तन कर रहे थे।

सबेरा होते ही मल्लसेनाओंने तोपें चलानी शुरू कर दीं। मराठे-सैनिक भी आ डटे। लड़ाई आरम्भ हो गयी। मराठे-सैनिक दुर्गपर आक्रमण करनेके लिये दुर्गकी खाई पार करनेकी चेष्टा करने लगे; किंतु बड़े-बड़े तालाबोंसे खाईमें जल प्रवाहित करनेकी सुव्यवस्था होनेके कारण खाईका पानी बरसाती नदीके प्रवाहकी भाँति बड़े जोरोंसे बह रहा था, अतः उसे पार करना सम्भव नहीं था। उधर गढ़पर बहुत-सी तोपें सजाकर हजारों सैनिक प्रतीक्षा कर रहे थे। दुर्गका सुदृढ़ लौहद्वार बंद था। इससे मराठोंने अनुमान कर लिया कि दुर्गमें निश्चय ही बड़ी भारी सेना है; परंतु बहुत देशोंको पराजित करनेसे उनका लोभ बढ़ा हुआ था। फिर उनका अहङ्कार भी बढ़ा था। वे तेजस्वी-साहसी योद्धा भी थे। अतः मल्लसेनासे पराजय स्वीकार कैसे करते ! उन्होंने बड़ा प्रयत्न करके किसी तरह खाई पार कर ली और बंदूकें चलाकर युद्धारम्भका संकेत कर दिया। मल्लसैनिकोंने मराठासैनिकोंको खाई पार करते देखकर एक ही साथ तोपें दागनी शुरू कर दीं और साथ-साथ बंदूकें भी चलाने लगे। तोपोंके गोलों और बंदूकोंकी गोलियोंसे मराठासैनिक मरने लगे और उनके शव खाईके जलमें बहने लगे। जो मराठादल खाईमें पहले उतरा था, उसमेंसे एक भी न बचा। मराठासेनापति भास्कर पण्डितने दूसरे दलको आज्ञा दी। उसमेंसे कुछ सैनिक पार हो गये; परंतु द्वारके पास जाते-न-जाते वे सब भी मारे गये। इस तरह मराठासेनापतिने तीन बार चेष्टा की और तीनों ही बार वे विफल रहे। मराठे-सैनिक मरने लगे।

राजा गोपालसिंह उस समय भी दुर्गके भीतर हरिनाम-कीर्तन कर रहे थे। सब लोग आतुर थे और बड़ी करुणासे तन्मय होकर भगवान्‌का पवित्र नाम-कीर्तन कर रहे थे। युद्धके सम्बन्धमें वे कुछ नहीं जानते थे। दुर्गमें प्रजाका समय डरते-डरते बीत रहा था। लोग तोप-बंदूकोंकी आवाजें तो सुन रहे थे, पर युद्धका क्या परिणाम हो रहा है, इसका किसीको पता न था। सच्ची आर्तभक्तिका मानो मूर्तिमान् प्रवाह बह रहा था। सामुदायिक सच्ची पुकार (प्रार्थना) का शुभ परिणाम हुआ। सहज दयालु भगवान्‌का करुणासमुद्र उमड़ा और उसका कार्य आरम्भ हो गया।

मदनमोहनजीके द्वारा तोपोंका चलाया जाना और शत्रुकी पराजय

युद्ध करते-करते दोनों ओरकी सेनाएँ थक गयीं। मराठासैनिक खाई पार करके विश्राम करने जंगलमें चले गये। तब मल्लसेनाको भी विश्राम मिल गया। इस बीचमें समय पाकर मल्लसेना तोपोंमें बारूद भरने लगी और नये-नये सैनिकोंके दल दुर्गमें आने लगे। अचानक, आश्चर्यचकित होकर मल्लसैनिकोंने देखा कि एक अश्वारोही राजप्रासादसे निकलकर बड़े जोरसे दुर्गकी ओर घोड़ा दौड़ाता आ रहा है। घोड़ेके खुरकी धूल चारों ओर उड़ रही है और वह घुड़सवार इतने वेगसे चला आ रहा है कि वह कौन है, यह भी अच्छी तरह दिखलायी नहीं पड़ता। सहसा दल-मादल तोपें गरजने लगीं और थोड़ी ही देर बाद देखा गया कि जंगलमें, जहाँ मराठे विश्राम कर रहे थे, वहाँ दल-मादल तोपोंके गोले वर्षाकी असंख्य बूँदोंकी भाँति पड़ रहे हैं और इसके फलस्वरूप असंख्य मराठे-सैनिक मौतके शिकार हो रहे हैं। देखते-देखते भास्कर पण्डितकी आधी सेना समाप्त हो गयी। कोई उपाय न देखकर मराठासेनापतिने पराजय स्वीकार कर ली और वे शेष सेनाको लेकर धीरे-धीरे पीछे हटने लगे। सुयोग देखकर मल्लसैनिक भी दुर्गसे निकल आये और मराठासैनिकोंके पीछे आक्रमण करते हुए वेगसे

चलने लगे। मराठोंकी सेना भङ्ग हो गयी और सैनिकोंने, जहाँ जिसे रास्ता मिला, भागकर प्राण बचाये। मराठासेनापति भास्कर पण्डित कुछ सैनिकोंको लेकर वनमें छिप गये; परंतु जंगलमें वे रास्ता नहीं खोज सके। बहुत दिनोंतक घूम-फिरकर छिपे-छिपे वे मेदिनीपुर जिलेके चन्द्रकोणाकी तरफ भाग गये। इस प्रकार मल्लभूमिके सैनिकोंने दुर्धर्ष मराठोंका गर्व चूर्ण कर दिया।

दल-मादल तोपोंके चलानेके सम्बन्धमें सबका यह कहना है कि स्वयं प्रभु मदनमोहनजीने उनको चलाया था। राजाकी प्रार्थनासे संतुष्ट होकर राजधानी विष्णुपुरका शत्रुओंसे उद्धार करनेके लिये स्वयं भगवान्‌ने ही आकर तोपें चलायीं, जिससे मराठे तो हारकर भाग गये और मल्लसैनिकोंके आनन्दकी सीमा न रही। राजधानी विष्णुपुरके रास्तोंपर सैनिक स्वच्छन्द टहलने लगे और राजधानीकी प्रजा सैनिकोंको अनेक प्रकारके उपहार देने लगी। भगवान्‌की भृत्यवत्सलता और भगवान्‌में विश्वाससे अद्भुत परिणामका यह ज्वलन्त उदाहरण है!

गोपालसिंहके राजत्वकालमें राज्यकी सुव्यवस्था

राजा गोपालसिंहके राजत्वकालमें फ्रांसके आबिरेन्याल नामक भ्रमणकारी विष्णुपुर आये थे। उन्होंने मल्लराज्यमें भ्रमण करके राज्यरक्षाकी व्यवस्था, प्रजाका सरल व्यवहार और अतिथि-सत्कारके सम्बन्धमें बहुत प्रशंसा की है। उन्होंने लिखा है कि मल्लभूमिकी प्रजाकी स्वाधीनता और धन-सम्पत्तिको कोई अपहरण नहीं करता था, राज्यमें कभी चोरी या डकैती नहीं होती थी। कोई विदेशी सज्जन यदि कभी मल्लराज्यमें आते तो मल्लराजा उनकी रक्षाका भार और जितने दिन वे राज्यमें रहते, उनका समस्त व्यय वहन करते थे। विदेशी सज्जनके साथ सदा ही राज्यकी ओरसे एक सहायक नियुक्त रहता। वे राज्यमें जहाँ जाना चाहते, वह उन्हें वहीं ले जाता। इसके लिये किसीको एक पैसा भी खर्च नहीं करना पड़ता था। राज्यके लोग कभी किसीकी हिंसा नहीं करते, कोई किसीका अनिष्ट नहीं करते थे। सब इतने सरल और धर्मभीरु थे कि यदि कोई रास्तेमें रुपयोंकी

थैली पा जाता तो वह तुरंत उसे राजाके पास पहुँचा देता और राजा चारों ओर ढोल पिटवा देते कि जिसकी थैली खो गयी हो, वह आकर ले जाय। गोपालसिंहके समय मल्लराज्यकी ऐसी व्यवस्था थी।

राजा गोपालसिंहकी मृत्युके बाद उनके लड़के चैतन्यसिंह राजा हुए। वे भी पिताकी तरह ही परम वैष्णव थे और दिन-रात धर्मकी विवेचना, धर्मग्रन्थपाठ तथा नाम-संकीर्तनमें लगे रहते एवं ब्राह्मणोंकी खूब भक्ति करते।

सुना जाता है कि ब्राह्मण धरणीधरके यहाँसे जो मदनमोहनजीकी मूर्ति विष्णुपुर लायी गयी थी और जिनकी भक्ति राजा रघुनाथसिंह—गोपालसिंह आदि करते रहे, वही आजकल कलकत्तेके बाग-बाजारके श्रीमदनमोहनजीके मन्दिरमें विराजित है।*

उपसंहार

विष्णुपुरके राजा गोपालसिंहकी 'दल-मादल' तोपोंके विषयमें ऐसी लोकोक्ति है कि जिस समय शत्रुओंकी सेनाने विष्णुपुरके चारों ओर बड़ा भारी घेरा डाल दिया और विष्णुपुरके गढ़में रहनेवाले सैनिक निराश हो गये, उस समय दल-मादल तोपोंको एक बहुत बड़े घोड़ेपर दोनों ओर सजाकर भगवान् मदनमोहन ही घोड़ेपर सवार होकर किलेसे बाहर निकले और शत्रु-सेनाके घेरेपर तोप दागते हुए चारों ओर अलातचक्रकी तरह घूमने लगे। उन तोपोंके गोलोंसे बहुत-सी शत्रुसेना मारी गयी और बचे हुए लोग भाग गये। तदनन्तर घोड़ेसहित भगवान् किलेमें लौट आये और तोपों-को लालबाँध (तालाब) पर उतारकर स्वयं अपने मन्दिरमें प्रवेश कर गये।

शत्रु-सेनापतिको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने सोचा कि 'न जाने इनके पास ऐसे कितने घुड़सवार होंगे, जब कि इस एक ही घुड़सवारने हमारी सेनाको परास्त कर दिया।' वे भयभीत हो मन्त्रीसहित घोड़ेके पीछे-पीछे विष्णुपुरके राजा गोपालसिंहके पास मन्दिरमें आकर उनके

---

* यह कथा एक बंगला पुस्तकके आधारपर संक्षेपमें लिखी गयी है।

शरणापन्न हुए। उन्होंने राजाके चरणोंमें पड़कर अपराधके लिये क्षमा माँगी। राजा गोपालसिंहने पूछा—'अपराध किस बातका ?' इसपर शत्रु-सेनापतिने सारा हाल आद्योपान्त कह सुनाया कि 'आपके एक ही घुड़सवार वीर पुरुषने तोपोंके गोलोंद्वारा हमारी सारी सेनाको तहस-नहस करके पराजित कर दिया। आपके पास ऐसे कितने वीर पुरुष हैं ?' राजा गोपालसिंहने कहा—'हमारे पास तो ऐसा कोई सवार नहीं है, जो घोड़ेपर तोप बाँधकर युद्ध करे।' सेनापति बोले—'यह तो प्रत्यक्ष घटना है। दोनों तोपें लालबाँधके इधर-उधर पड़ी हैं और घोड़ा मन्दिरके अहातेमें मन्दिरके दरवाजेके बाहर मौजूद है एवं घुड़सवारको हमने स्वयं इस सभामण्डपमें प्रवेश करते देखा है।' यह सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ।

दोनों वहाँसे सभामण्डपके भीतर गये तो शत्रुसेनापतिने मदनमोहनकी विशाल मूर्तिको देखकर तुरंत कहा कि 'बस, ये ही तो थे।' तब राजा गोपालसिंहने भगवान् मदनमोहनके वस्त्रोंको देखा तो वे पसीनेसे भीगे हुए थे। राजा गोपालसिंह करुणभावसे अश्रुपात करते हुए बोले—'मैं बड़ा ही राज्यलोलुप हूँ। मेरे इस तुच्छ कामके लिये आपको युद्धमें जाना पड़ा।' फिर उन्होंने शत्रुसेनापतिको आश्वासन देकर आदरपूर्वक बिदा कर दिया और कहा—'आप धन्यभाग्य हैं, जो आपको साक्षात् भगवान्‌के दर्शन हुए। आपने जो कुछ आश्चर्य देखा है, यह सब इन भृत्यवत्सल शरणागतपालक दयासिन्धु भगवान् मदनमोहनजीकी ही लीला है।'

उन दोनों तोपोंमेंसे एक तो लालबाँध तालाबके कच्चे परकोटेके बाहर पास ही पड़ी हुई अभी मौजूद है और सुना जाता है कि दूसरी लालबाँध तालाबके कीचड़में धँस गयी है। इन्हीं दोनों तोपोंका नाम 'दल-मादल' था। ये दोनों तोपें राज्यमें पहलेसे ही थीं या स्वयं भगवान् ही इन्हें लाये, यह तो भगवान् ही जानें, पर जो तोप मौजूद है, उसकी लम्बाई करीब १२ ॥ फुट और उसके पीछेके गोलेका माप करीब ८ फुट है तथा गोले निकलनेका तोपका मुँह करीब १ फुट है। उसे देखनेसे मालूम होता है कि उस जमानेमें इतनी

बड़ी तोप ढालनेका कोई यन्त्र नहीं था और वह धातु भी इतनी चिकनी तथा अद्भुत-सी प्रतीत होती है, जैसे कई धातु मिलाकर बनायी गयी हो। सैकड़ों वर्ष बीतनेपर भी उसपर कहीं कोई जंग बिलकुल नहीं लगा है। दूसरे, यह भी आश्चर्य होता है कि इतनी-इतनी बड़ी दो तोपें एक घोड़ेपर लादना और उनका चलाना, कैसे सम्भव हुआ। इसीसे यह अनुमान होता है कि ये तोपें स्वयं भगवान्‌के द्वारा ही लायी हुई हैं। भगवान्‌के लिये सभी कुछ सम्भव है; वे असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं। वास्तवमें क्या बात है, सो तो भगवान् ही जानें।

तर्कवादी लोग कहते हैं कि 'यह सब 'मिथ्या कल्पनामात्र' है। नामकीर्तनसे शत्रुसेनापर विजय प्राप्त करनेकी बात करना निरा पागलपन है और भगवान्‌ने तोप चलाकर शत्रुको परास्त कर दिया, यह तो सर्वथा अयुक्त है। साथ ही 'शत्रुसेना सिरपर खड़ी हो और कोई सबको लेकर कीर्तन करने बैठ जाय'—यह तो प्रत्यक्ष कर्तव्यविमुखता है।'

कर्तव्यकी दृष्टिसे बात सर्वथा सत्य है। जिनकी भगवान्‌में पूर्ण विश्वासयुक्त निर्भरता नहीं है, वे यदि मोहवश भगवान्‌के नामकी मिथ्या आड़ लेकर बैठ जायँ अथवा भयसे कर्तव्यविमुख होकर अपनी कमजोरी छिपानेके लिये कोई कीर्तनका ढोंग करें तो अवश्य ही उनका कार्य पागलपन और अयुक्त है तथा कर्तव्यविमुखता भी स्पष्ट है और उन्हें सफलता भी नहीं मिल सकती; परंतु जिनको पूर्ण विश्वास है, उनके लिये न तो यह कल्पना है, न पागलपन और न अयुक्त ही है। उनके लिये तो यह ज्वलन्त सत्य है। प्राचीन तथा अर्वाचीन ग्रन्थोंमें ऐसे बहुत-से उदाहरण मिलते हैं, जहाँ भगवान्‌ने भक्तोंके कार्य स्वयं किये हैं। बर्बरीकने बताया था कि 'रणक्षेत्रमें केवल श्रीकृष्णका ही चक्र चल रहा था।' राणा जयमल्लके लिये भगवान्‌ने उनके शत्रुसे लड़कर उसे परास्त किया था। और भी अनेकों कथाएँ हैं। गीतामें भगवान्‌ने जो **'योगक्षेमं वहाम्यहम्'** की प्रतिज्ञा की है, उसके अनुसार भगवान्‌का ऐसा करना स्वाभाविक ही है। चाहिये विश्वासपूर्ण

सच्ची निर्भरता ! महात्मा गाँधी तो बड़े बुद्धिमान् थे, उन्होंने भी एक स्थानपर कहा है—'मैं बिना किसी हिचकिचाहटके कह सकता हूँ कि लाखों आदमियोंद्वारा सच्चे दिलसे एक ताल और लयके साथ गायी जानेवाली रामधुनकी ताकत फौजी ताकतके दिखावेसे बिलकुल अलग और कई गुना बढ़ी-चढ़ी है।' इतनेपर भी सर्वसाधारणके लिये उचित और सुरक्षित यही है कि 'भगवान्‌का स्मरण करते हुए कर्तव्यका पूर्णरूपसे पालन किया जाय।' इसमें भगवद्विश्वास भी है और कर्तव्यपालन भी ! विश्वासी पुरुषोंको इस इतिहाससे अपने विश्वासको और भी सुपुष्ट और सुदृढ़ करना चाहिये।

भगवदर्थ कर्म और भगवान्‌की दयाका रहस्य

समस्त प्राणी, पदार्थ, क्रिया और भावका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़कर साधन करनेसे साधकके हृदयमें उत्साह, समता, प्रसन्नता, शान्ति और भगवान्‌की स्मृति हर समय रह सकती है। इससे भगवान्‌में परम श्रद्धा-प्रेम होकर भगवान्‌की प्राप्ति सहज ही हो सकती है। जो कुछ भी है—सब भगवान्‌का है और मैं भी भगवान्‌का हूँ, भगवान् सबमें व्यापक हैं (गीता १८। ४६), इसलिये सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है, मैं जो कुछ कर रहा हूँ, भगवान्‌की प्रेरणाके अनुसार भगवान्‌के लिये ही कर रहा हूँ, भगवान् ही मेरे परम प्यारे और परम हितैषी हैं—इस प्रकारके भावसे अपने घर या दूकानके कामको अथवा किसी भी धार्मिक संस्थाके कामको अपने प्यारे भगवान्‌का ही काम समझकर और स्वयं भगवान्‌का ही होकर काम करनेसे साधकको कभी उकताहट नहीं होती, प्रत्युत चित्तमें उत्साह, प्रसन्नता और शान्ति उत्तरोत्तर बढ़ती रहती है। यदि नहीं बढ़ती है तो गम्भीरतापूर्वक विचार करना चाहिये कि इसमें क्या कारण है। खोज करनेपर पता लगेगा कि श्रद्धा-विश्वासकी कमी ही इसमें कारण है। इस कमीकी

निवृत्तिके लिये साधकको भगवान्‌के शरण होकर उनसे करुणापूर्वक स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये और भगवान्‌के गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्यको समझना चाहिये।

गीताप्रचारका काम तो प्रत्यक्ष भगवान्‌का ही काम है; इसमें कोई शङ्काकी बात नहीं है। जो मनुष्य श्रीमद्भगवद्गीताके अर्थ और भावको समझकर गीताका प्रचार करता है तो उससे उसका उद्धार हो जाता है और भगवान् उसपर बहुत ही प्रसन्न होते हैं। इसके लिये गीता अ० १८ श्लो० ६८-६९ को देखना चाहिये—

य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः॥
न च तस्मान्मनुष्येषु कश्चिन्मे प्रियकृत्तमः।
भविता न च मे तस्मादन्यः प्रियतरो भुवि॥

'जो पुरुष मुझमें परम प्रेम करके इस परम रहस्ययुक्त गीताशास्त्रको मेरे भक्तोंमें कहेगा, वह मुझको प्राप्त होगा—इसमें कोई संदेह नहीं है। उससे बढ़कर मेरा प्रिय कार्य करनेवाला मनुष्योंमें कोई भी नहीं है तथा पृथ्वीभरमें उससे बढ़कर मेरा प्रिय दूसरा कोई भविष्यमें होगा भी नहीं।'

जो मनुष्य इन दोनों श्लोकोंके अर्थ और भावको भलीभाँति समझ जाता है, उसका तो सारा जीवन गीताप्रचारमें ही व्यतीत होना चाहिये। वर्तमानमें जो कुछ भी गीताका प्रचार हमारे देखने-सुननेमें आता है, उसका भी प्रधान कारण इन दो श्लोकोंके अर्थ और भावको जाननेका प्रभाव ही है।

अतः गीताप्रचारका कार्य भगवान्‌का ही कार्य है और यह भगवान्‌की विशेष कृपासे ही प्राप्त होता है। रुपये खर्च करनेसे यह नहीं मिलता।

भगवान्‌का काम करना—उनकी आज्ञाका पालन करना भगवान्‌की ही सेवा है। वास्तवमें इस कामको भगवान्‌की सेवा समझकर करनेसे अवश्य ही प्रसन्नता तथा शान्ति प्राप्त हो सकती है। यदि नहीं मिलती है तो उसने इस कामको भगवान्‌की सेवा समझा ही नहीं। यदि कोई मनुष्य

महात्माको महात्मा जानकर उनके कार्यको, उनकी आज्ञाके पालनको उनकी सेवा समझकर करता है तो उसके हृदयमें भी इतना आनन्द होता है कि वह उसमें समाता ही नहीं, फिर भगवान्‌की सेवासे परम प्रसन्नता और शान्ति प्राप्त हो इसमें तो कहना ही क्या है।

गीताप्रचारका कार्य करनेवालोंके चित्तमें यदि भगवान्‌की स्मृति, प्रसन्नता, उत्साह, प्रेम और शान्ति नहीं रहती है तो उन्हें इसके कारणकी खोज करनी चाहिये एवं जो दोष समझमें आये उसको भगवान्‌की दयाका आश्रय लेकर हटाना चाहिये। भगवान्‌की दया सबपर अपार है, उसको पूर्णतया न समझनेके कारण ही हमलोग प्रसन्नता और शान्तिकी प्राप्तिसे वञ्चित रहते हैं। हमलोगोंपर भगवान्‌की जो अपार पूर्ण दया है, उसके शतांशको भी हम नहीं समझते हैं। किंतु न समझमें आनेपर भी हमलोगोंको अपने ऊपर भगवान्‌की अपार दया मानते रहना चाहिये। ऐसा करनेसे वह आगे जाकर समझमें आ सकती है।

दयाके इस तत्त्वको भलीभाँति समझनेके लिये यहाँ एक दृष्टान्त बतलाया जाता है। वह इस प्रकार है—एक क्षत्रिय बालक राज्यकी सहायता और व्यवस्थासे एक महाविद्यालयमें अध्ययन करता था। उसके माता-पिता उसे सदा यही उपदेश दिया करते थे कि 'इस देशके राजा उच्च कोटिके ज्ञानी योगी महापुरुष हैं, वे हेतुरहित प्रेमी और दयालु हैं, उनकी हमलोगोंपर बड़ी भारी दया है। हमलोगोंका देहान्त हो जाय तो तुम चिन्ता न करना; क्योंकि महाराजसाहबकी दया तुमपर हमलोगोंकी अपेक्षा अतिशय अधिक है।' माता-पिताके इस उपदेशके अनुसार वह ऐसा ही मानता था। समय आनेपर उसके माता-पिता चल बसे, परंतु वह बालक दुःखित नहीं हुआ। विद्यालयके सहपाठी बालकोंने उससे पूछा—'तुम्हारे माता-पिता मर गये, फिर भी तुम्हारे चेहरेपर खेद नहीं, क्या बात है? अब तुम्हारा पालन-पोषण कौन करेगा?' क्षत्रिय बालकने कहा—'मुझे शोक क्यों होता? क्योंकि मेरे माता-पितासे भी बढ़कर मुझपर दया और प्रेम करनेवाले

हमारे परम हितैषी महाराजसाहब हैं। महाराजसाहब उच्च कोटिके भक्त एवं ज्ञानी महापुरुष हैं। मैं तो उन्हींपर निर्भर हूँ। बालककी यह बात सुनकर वहाँके प्रधानाध्यापकको बड़ा आश्चर्य हुआ कि देखो, इस बालकके हृदयमें महाराजसाहबके प्रति कितनी श्रद्धा-भक्ति है। वे प्रधानाध्यापक राज्यकी कौंसिलके सदस्य थे। एक दिन जब कौंसिलकी बैठक हुई, तब वे भी उसमें उपस्थित थे। उस दिन महाराजसाहबने कहा—'अपने देशमें कोई अनाथ बालक हो तो बतलायें, उसका प्रबन्ध राज्यकी ओरसे सुचारुरूपसे हो जाना उचित है।' कौंसिलके कई सदस्योंने उसी क्षत्रिय बालकका नाम बतलाया। इसपर राजाने सबकी सम्मतिसे उस बालकके लिये खाने-पीनेका सब प्रबन्ध कर दिया और उसके कच्चे घरको पक्का बनानेका आदेश दे दिया। पढ़ाईका प्रबन्ध तो पहलेसे ही राज्यकी ओरसे था ही।

कुछ ही दिनों बाद जब राजाकी आज्ञासे राजकर्मचारी उसके कच्चे घरको पक्का बनानेके लिये तोड़ रहे थे, तब उस क्षत्रिय बालकके एक सहपाठीने दौड़कर उसे सूचना दी कि तुम्हारे घरको राजकर्मचारी तोड़कर बर्बाद कर रहे हैं। यह सुनकर वह बालक बहुत प्रसन्न हुआ और कहने लगा—'अहा ! महाराजसाहबकी मुझपर बड़ी ही दया है। सम्भव है, वे पुराना तुड़वाकर नया घर बनवायेंगे !' उसकी यह बात सुनकर प्रधानाध्यापक आश्चर्यचकित हो गये और सोचने लगे—'देखो, इस बालकको कितना प्रबल विश्वास है। महाराजपर कितनी अटूट श्रद्धा है।'

पुनः जब दूसरी बार कौंसिलकी बैठकमें प्रधानाध्यापक सम्मिलित हुए, तब राजाने यह प्रस्ताव रखा—'मैं वृद्ध हो गया हूँ। मेरे संतान नहीं हैं। अतः युवराजपद किसको दूँ? इसके योग्य कौन है?' इसपर प्रधानाध्यापकने बतलाया—'वह क्षत्रिय बालक गुण, आचरण, विद्या और स्वभावमें सबसे बढ़कर है। वह राजभक्त है और आपपर तो उसकी अपार श्रद्धा है।' इस बातका दूसरे सदस्योंने भी प्रसन्नतापूर्वक समर्थन किया। राजाने सर्वसम्मतिसे उस क्षत्रिय बालकको ही युवराजपद दे दिया।

दूसरे दिन राजाके मन्त्री और कुछ उच्च पदाधिकारी उस क्षत्रिय बालकके घरपर गये। उन सबको आते देख उस क्षत्रिय बालकने उनका अत्यन्त आदर-सत्कार किया और कहा—'मैं आपकी क्या सेवा करूँ?' पदाधिकारियोंने कहा—'महाराजसाहबकी आपपर बड़ी भारी दया है।' बालक बोला—'यह मैं पहलेसे ही जानता हूँ कि महाराजकी मुझपर अपार दया है। इसी कारण आपलोगोंकी भी मुझपर बड़ी दया है।' पदाधिकारियोंने कहा—'हम तो आपके सेवक हैं, आपकी दया चाहते हैं।' बालक बोला—'आप ऐसा कहकर मुझे लज्जित न कीजिये। मैं तो आपका सेवक हूँ। महाराजसाहबकी मुझपर दया है—इसको मैं अच्छी तरह जानता हूँ।' पदाधिकारियोंने कहा—'आप जो जानते हैं उससे कहीं बहुत अधिक उनकी दया है।' क्षत्रिय बालकने पूछा—'क्या महाराजसाहबने मेरे विवाहका प्रबन्ध कर दिया है?' तब उन्होंने कहा—'विवाहका प्रबन्ध ही नहीं, महाराजसाहबकी तो आपपर अतिशय दया है।' बालकने पुनः पूछा—'क्या महाराजसाहबने मुझको दो-चार गाँवोंकी जागीरदारी दे दी है?' पदाधिकारियोंने कहा—'यह तो कुछ नहीं, उनकी आपपर जो दया है, उसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते।' इसपर बालकने निवेदन किया—'उनकी मुझपर कैसी दया है, इसे आप ही कृपा करके बतलाइये।' उन्होंने कहा—'आपको महाराजसाहबने युवराजपद दे दिया है। इसलिये हम आपकी दया चाहते हैं।'

लड़केने कहा—क्या यह सच्ची बात है? वे बोले सच्ची बात है। उसे बड़ा भारी आश्चर्य हुआ। क्योंकि वह अनुमान ही नहीं कर सकता था कि महाराजकी इतनी बड़ी भारी दया मेरे ऊपर हो सकती है। उसे थोड़ा भी अनुमान नहीं था कि इस प्रकारकी दया वे कर सकते हैं। राजाने उस लड़केको युवराजपद दे दिया। परंतु अपने राजाके पास तो सबके लिये युवराजपद है। वे सबको अपने समान बना लेते हैं। ऐसा राजा अपना ईश्वर है। जिसने आपको मनुष्यशरीर दिया उसने आपके लिये युवराजपद

पहलेसे ही कायम कर रखा है। आप उन्हें ठुकरा दें तो अपनी मूर्खता है। राजाकी इतनी भारी दया है कि अपने ऊपर आनन्दकी, प्रेमकी बरसा बरस रही है। अब आप छाता लगा लें तो उस विभूतिसे वञ्चित रह जाएँगे। नहीं मानना अथवा अविश्वास ही अश्रद्धा है। यही छाता लगाना है। अपनेको विश्वास रहना चाहिये कि भगवान्‌की अपने ऊपर बड़ी दया है। भगवान् अपनेसे बहुत प्रेम करना चाहते हैं। आप उनसे हाथ बढ़ाकर मिलना चाहें तो वे निकट खड़े दीखेंगे, मिलनेके लिये उत्सुक हो रहे हैं, ऐसे दीखेंगे। किंतु आपका भगवान्‌में विश्वास होना चाहिये। आपकी श्रद्धा होनी चाहिये।

इस दृष्टान्तको अध्यात्मविषयमें यों घटाना चाहिये कि भगवान् ही ज्ञानी महापुरुष राजा हैं। श्रद्धालु साधक ही क्षत्रिय बालक है। उपदेश देनेवाले गुरुजन ही माता-पिता हैं। सत्सङ्गी साधकगण ही सहपाठी बालक हैं। भगवत्प्रेमी महापुरुष ही कौंसिलके सदस्य प्रधानाध्यापक हैं। राज्यकी ओरसे बालकके खान-पानका प्रबन्ध कराये जानेको लोकदृष्टिसे अनुकूल परिस्थितिकी प्राप्ति और घर तुड़वाये जानेको लोकदृष्टिसे प्रतिकूल परिस्थितिकी प्राप्ति समझना चाहिये तथा इन दोनोंमें बालकके द्वारा राजाका मङ्गलविधान मानकर प्रसन्न होनेको प्रत्येक घटनामें भगवान्‌का मङ्गलमय विधान मानकर प्रसन्न होना समझना चाहिये। बालकका राजाको सुहृद् मानकर उनपर निर्भरता, श्रद्धा और विश्वास करना ही भगवत्-शरणागतिका साधन समझना चाहिये।

इस दृष्टान्तसे हमलोगोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हमलोग अपने ऊपर भगवान्‌की जितनी दया मानते हैं, भगवान्‌की दया उससे कहीं बहुत अधिक है। भगवान्‌की हमपर इतनी दया है कि उसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। यदि हम उस दयाको जान जायँ तो क्षत्रिय बालककी भाँति हमें इतना आनन्द और प्रसन्नता हो कि उसकी सीमा ही न रहे; फिर हमें अपने-आपका भी ज्ञान न रहे।

अतः हमें स्वेच्छा, अनिच्छा या परेच्छासे जो कुछ भी प्राप्त हो, उसे

भगवान्‌का दयापूर्ण मङ्गलमय विधान समझकर और अपनेद्वारा होनेवाली क्रियाओंको भगवान्‌का काम तथा भगवान्‌की परम सेवा समझकर हर समय भगवान्‌को याद रखते हुए आनन्दमें मग्न रहना चाहिये।

इस प्रकार भगवद्भक्तिके साधनसे साधकके चित्तमें प्रसन्नता, रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगता है, हृदय प्रफुल्लित हो जाता है, वाणी गद्गद हो जाती है तथा कण्ठ अवरुद्ध हो जाता है। किंतु मनुष्य जब साधन करते-करते सिद्धावस्थामें पहुँच जाता है—भगवान्‌को पा लेता है, तब वह आमोद, प्रमोद, हर्ष आदिसे ऊपर उठकर परम शान्ति और परम आनन्दको प्राप्त कर लेता है। जैसे कड़ाहीमें घी डालकर उसमें कचौड़ी सेंकी जाती है, वह जबतक कच्ची रहती है तबतक तो उछलती है—उसमें विशेष क्रिया होती रहती है; किंतु जब वह पकने लगती है, तब उसका उछलना कम हो जाता है और सर्वथा पक जानेपर तो वह शान्त और स्थिर हो जाती है। इसी प्रकार साधन करते समय साधकमें जबतक कच्चाई रहती है, तबतक वह साधन-विषयक आमोद-प्रमोदमें उछलता रहता है एवं उसके रोमाञ्च, अश्रुपात और कण्ठावरोध होता रहता है; किंतु जब साधन पकने लगता है, तब हर्षादि विकारोंका उफान कम हो जाता है और सर्वथा पक जानेपर वह आमोद, प्रमोद, हर्ष आदि विकारोंसे रहित परम शान्त हो जाता है। फिर वह परमात्मामें अचल और स्थिर होकर परम शान्ति और परमानन्दस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो जाता है।

—★—

दानका रहस्य

दानमें महत्त्व है त्यागका, वस्तुके मूल्य या संख्याका नहीं। ऐसी त्यागबुद्धिसे जो सुपात्रको यानी जिस वस्तुका जिसके पास अभाव है, उसे वह वस्तु देना और उसमें किसी प्रकारकी कामना न रखना उत्तम दान है। निष्कामभावसे किसी भूखेको भोजन और प्यासेको जल देना सात्त्विक

दान है। संत श्रीएकनाथजीकी कथा आती है कि वे एक समय प्रयागसे काँवरपर जल लेकर श्रीरामेश्वरम् चढ़ानेके लिये जा रहे थे। रास्तेमें जब एक जगह उन्होंने देखा कि एक गदहा प्यासके कारण पानीके बिना तड़प रहा है, उसे देखकर उन्हें दया आ गयी और उन्होंने उसे थोड़ा-सा जल पिलाया, इससे उसे कुछ चेत-सा हुआ। फिर उन्होंने थोड़ा-थोड़ा करके सब जल उसे पिला दिया। वह गदहा उठकर चला गया। साथियोंने सोचा कि त्रिवेणीका जल व्यर्थ ही गया और यात्रा भी निष्फल हो गयी। तब एकनाथजीने हँसकर कहा—'भाइयो, बार-बार सुनते हो, भगवान् सब प्राणियोंके अंदर हैं, फिर भी ऐसे बावलेपनकी बात सोचते हो! मेरी पूजा तो यहींसे श्रीरामेश्वरम्को पहुँच गयी। श्रीशङ्करजीने मेरे जलको स्वीकार कर लिया।'

एक महाजनकी कहानी है कि वह सदैव यज्ञादि कर्मोंमें लगा रहता था। उसने बहुत दान किया। इतना दान किया कि उसके पास खानेको भी कुछ न रह गया। तब उसकी स्त्रीने कहा—'पासके गाँवमें एक सेठ रहते हैं, वे पुण्योंको मोल खरीदते हैं, अतः आप उनके पास जाकर और अपना कुछ पुण्य बेचकर द्रव्य ले आइये, जिससे अपना कुछ काम चले।' इच्छा न रहते हुए भी स्त्रीके बार-बार कहनेपर वह जानेको उद्यत हो गया। उसकी स्त्रीने उसके खानेके लिये चार रोटियाँ बनाकर साथ दे दीं। वह चल दिया और उस नगरके कुछ समीप पहुँचा, जिसमें वे सेठ रहते थे। वहाँ एक तालाब था। वहीं शौच-स्नानादि कर्मोंसे निवृत्त होकर वह रोटी खानेके लिये बैठा कि इतनेमें एक कुतिया आयी। वह वनमें ब्यायी थी। उसके बच्चे और वह, सभी तीन दिनोंसे भूखे थे; भारी वर्षा हो जानेके कारण वह बच्चोंको छोड़कर शहरमें नहीं जा सकी थी। कुतियाको भूखी देखकर उसने उस कुतियाको एक रोटी दी। उसने उस रोटीको खा लिया। फिर दूसरी दी तो उसको भी खा लिया। इस प्रकार उसने एक-एक करके चारों रोटियाँ कुतियाको दे दीं। कुतिया रोटी खाकर तृप्त हो गयी। फिर, वह वहाँसे भूखा ही उठकर चल दिया तथा उस सेठके पास पहुँचा। सेठके पास जाकर

उसने अपना पुण्य बेचनेकी बात कही। सेठने कहा—'आप दोपहरके बाद आइये।'

उस सेठकी स्त्री पतिव्रता थी। उसने स्त्रीसे पूछा—'एक महाजन आया है और वह अपना पुण्य बेचना चाहता है। अतः तुम बताओ कि उसके पुण्योंमेंसे कौन-सा पुण्य सबसे बढ़कर लेनेयोग्य है।' स्त्रीने कहा—'आज जो उसने तालाबपर बैठकर एक भूखी कुतियाको चार रोटियाँ दी हैं, उस पुण्यको खरीदना चाहिये; क्योंकि उसके जीवनमें उससे बढ़कर और कोई पुण्य नहीं है।' सेठ 'ठीक है'—ऐसा कहकर बाहर चले आये।

नियत समयपर महाजन सेठके पास आया और बोला—'आप मेरे पुण्योंमेंसे कौन-सा पुण्य खरीदेंगे?' सेठने कहा—'आपने आज जो यज्ञ किया है, हम उसी यज्ञके पुण्यको लेना चाहते हैं।' महाजन बोला—'मैंने तो आज कोई यज्ञ नहीं किया। मेरे पास पैसा तो था ही नहीं, मैं यज्ञ कहाँसे कैसे करता।' इसपर सेठने कहा—'आपने जो आज तालाबपर बैठकर भूखी कुतियाको चार रोटियाँ दी हैं, मैं उसी पुण्यको लेना चाहता हूँ।' महाजनने पूछा—'उस समय तो वहाँ कोई नहीं था, आपको इस बातका कैसे पता लगा?' सेठने कहा—'मेरी स्त्री पतिव्रता है, उसीने ये सब बातें मुझे बतायी हैं।' तब महाजनने कहा—'बहुत अच्छा' ले लीजिये; परंतु मूल्य क्या देंगे? सेठने कहा—'आपकी रोटियाँ जितने वजनकी थीं, उतने ही हीरे-मोती तौलकर मैं दे दूँगा।' महाजनने स्वीकार किया और उसकी सम्मतिके अनुसार सेठने अंदाजसे उतने ही वजनकी चार रोटियाँ बनाकर तराजूके एक पलड़ेपर रखीं और दूसरे पलड़ेपर हीरे-मोती आदि रख दिये; किंतु बहुत-से रत्नोंके रखनेपर भी वह (रोटीवाला) पलड़ा नहीं उठा। इसपर सेठने कहा—'और रत्नोंकी थैली लाओ।' जब उस महाजनने अपने इस पुण्यका इस प्रकारका प्रभाव देखा तो उसने कहा कि 'सेठजी! मैं अभी इस पुण्यको नहीं बेचूँगा।' सेठ बोला—'जैसी आपकी इच्छा।'

तदनन्तर वह महाजन वहाँसे चल दिया और उसी तालाबके किनारेसे,

जहाँ बैठकर उसने कुतियाको रोटियाँ खिलायी थीं, थोड़े-से चमकदार कंकड़-पत्थरों तथा काँचके टुकड़ोंको कपड़ेमें बाँधकर अपने घर चला आया। घर आकर उसने वह पोटली अपनी स्त्रीको दे दी और कहा—'इसको भोजन करनेके बाद खोलेंगे।' ऐसा कहकर वह बाहर चला गया। स्त्रीके मनमें उसे देखनेकी इच्छा हुई। उसने पोटलीको खोला तो उसमें हीरे-पन्ने-माणिक आदि रत्न जगमगा रहे थे। वह बड़ी प्रसन्न हुई। थोड़ी देर बाद जब वह महाजन घर आया तो स्त्रीने पूछा—'इतने हीरे-पन्ने कहाँसे ले आये ?' महाजन बोला—'क्यों मजाक करती हो ?' स्त्रीने कहा—'मजाक नहीं करती, मैंने स्वयं खोलकर देखा है, उसमें तो ढेर-के-ढेर बेशकीमती हीरे-पन्ने भरे हैं।' महाजन बोला—'लाकर दिखाओ।' उसने पोटली लाकर खोलकर सामने रख दी। वह उन्हें देखकर चकित हो गया। उसने इसको अपने उस पुण्यका प्रभाव समझा। फिर उसने अपनी यात्राका सारा वृत्तान्त अपनी पत्नीको कह सुनाया।

कहनेका अभिप्राय यह कि ऐसे अभावग्रस्त आतुर प्राणीको दिये गये दानका अनन्तगुना फल हो जाता है, भगवान्‌की दयाके प्रभावसे कंकड़-पत्थर भी हीरे-पन्ने बन जाते हैं।

इस प्रकार दीन-दुःखी, आतुर और अनाथको दिया गया दान उत्तम है। किसीके संकटके समय दिया हुआ दान बहुत ही लाभकारी होता है। भूकम्प, बाढ़ या अकाल आदिके समय आपद्ग्रस्त प्राणीको एक मुट्ठी चना देना भी बहुत उत्तम होता है। जो विधिपूर्वक सोना, गहना, तुलादान आदि दिया जाता है, उससे उतना लाभ नहीं, जितना आपत्तिकालमें दिये गये थोड़े-से दानका होता है। अतः हरेक मनुष्यको आपत्तिग्रस्त, अनाथ, लूले, लँगड़े, दुःखी, विधवा आदिकी सेवा करनी चाहिये। कुपात्रको दान देना तामसी है। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाके लिये दिया हुआ दान राजसी है; क्योंकि मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा भी पतन करनेवाली है। आज तो यह मान-बड़ाई हमें मीठी लगती है, पर उसका निश्चित परिणाम पतन है। अतः मान-

बड़ाईकी इच्छाका त्याग कर देना चाहिये, बल्कि यदि किसी प्रकार निन्दा हो जाय तो वह अच्छी समझी जाती है। श्रीकबीरदासजी कहते हैं—

निन्दक नियरें राखिये, आँगन कुटी छवाय।
बिन पानी साबुन बिना, निरमल करै सुभाय॥

इसलिये परम हितकी दृष्टिसे मान-बड़ाईके बदले संसारमें अपमान-निन्दा होना उत्तम है। साधकके लिये मान-बड़ाई मीठा विष है और अपमान-निन्दा अमृतके तुल्य है। इसीलिये निन्दा करनेवालेको आदरकी दृष्टिसे देखना चाहिये; परंतु कोई भी निन्दनीय पापाचार नहीं करना चाहिये। दुर्गुण-दुराचार बड़े ही खतरेकी चीज है। इसलिये इनका हृदयसे त्याग कर देना चाहिये। अपने सद्गुणोंको छिपाकर दुर्गुणोंको प्रकट करना चाहिये। आजकल लोग सच्चे दुर्गुणोंको छिपाकर बिना हुए ही अपनेमें सद्गुणोंका संग्रह बताकर उनका प्रचार करते हैं, यह सीधा नरकका रास्ता है। अतः मान-बड़ाईकी इच्छा हृदयसे सर्वथा निकाल देनी चाहिये। संसारमें हमारी प्रतिष्ठा हो रही है और हम यदि उसके योग्य नहीं हैं तो हमारा पतन हो रहा है। मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा चाहनेवालेसे भगवान् दूर हो जाते हैं; क्योंकि मान-बड़ाई-प्रतिष्ठाकी इच्छा पतनमें ढकेलनेवाली है। मान-बड़ाईको रौरवके समान और प्रतिष्ठाको विष्ठाके समान समझना चाहिये। यही संतोंका आदेश है।

यह ध्यान रखना चाहिये कि सुपात्रको दिया गया दान दोनोंके लिये ही कल्याणकारी है। कुपात्रको दिया गया दान दोनोंको डुबानेवाला है। जैसे पत्थरकी नौका बैठनेवालेको साथ लेकर डूब जाती है, उसी प्रकार कुपात्र दाताको साथ लेकर नरकमें जाता है।

दानके सम्बन्धमें एक बात और समझनेकी है। बड़े धनी पुरुषके द्वारा दिये गये लाखों रुपयोंके दानसे निर्धनके एक रुपयेका दान अधिक महत्त्व रखता है; क्योंकि निर्धनके लिये एक रुपयेका दान भी बहुत बड़ा त्याग है। भगवान्‌के यहाँ न्याय है। ऐसा न होता तो फिर निर्धनोंकी मुक्ति ही नहीं

होती। इस विषयमें एक कहानी है। एक राजा प्रजाजनोंके सहित तीर्थ करनेके लिये गये। रास्तेमें एक आदमी नंगा पड़ा था, वह ठंडके कारण ठिठुर रहा था। राजाके साथी प्रजाजनोंमें एक जाट था, उसने अपनी दो धोतियोंमेंसे एक धोती उस नंगे आदमीको दे दी, इससे उसके प्राण बच गये। जाटके पास पहननेको एक ही धोती रह गयी। आगे जब वे दूर गये तो वहाँ बहुत कड़ी धूप थी, पर उन्होंने देखा कि बादल उनपर छाया करते चले जा रहे हैं। राजाने सोचा कि 'हमारे पुण्यके प्रभावसे ही बादल छाया करते हुए चल रहे हैं।' तदनन्तर वे एक जगह किसी वनमें ठहरे। जब चलने लगे, तब किसी महात्माने पूछा—'राजन्! तुम्हें इस बातका पता है कि ये बादल किसके प्रभावसे छाया करते हुए चल रहे हैं?' राजा कुछ भी उत्तर नहीं दे सके। तब महात्माने कहा—'अच्छा, तुम एक-एक करके यहाँसे निकलो। जिसके साथ बादल छाया करते हुए चलें, इसको उसी पुण्यवान्‌के पुण्यका प्रभाव समझना चाहिये।' तब पहले राजा वहाँसे चले, फिर एक-एक करके सब प्रजाजन चले, पर बादल वहीं रहे। तब राजाने कहा—'देखो तो, पीछे कौन रह गया है।' सेवकोंने देखा कि वहाँ एक जाट सोया पड़ा है। उसे उठाकर वे राजाके पास लाये, तब बादल भी उसके साथ-साथ छाया करते चलने लगे। तब महात्मा बोले—'यह इसी पुण्यवान्‌के पुण्यका प्रभाव है।' राजाने उससे पूछा—'तुमने ऐसा कौन-सा पुण्य किया है?' बार-बार पूछनेपर उसने कहा कि 'मैंने और तो कोई पुण्य नहीं किया, अभी रास्तेमें मैंने अपनी दो धोतियोंमेंसे एक धोती रास्तेमें पड़े जाड़ेसे ठिठुरते हुए एक नंगे मनुष्यको दी थी।'

इसपर महात्माने राजासे कहा—'राजन्! तुम बड़ा दान करते हो, परंतु तुम्हारे पास अतुल सम्पत्ति है, इसलिये तुम्हारा त्याग दो धोतीमेंसे एक दे डालनेके समान नहीं हो सकता।'

इस प्रकार दानका रहस्य समझकर दान करना चाहिये।

ज्ञान और भक्तिके साधनसे अहंता-ममताका अभाव

मनुष्यके पास जितनी अधिक सम्पत्ति और जितना अधिक कुटुम्ब है, उतना ही अधिक बन्धन है। मान लीजिये, किसी एक आदमीके पास सैकड़ों मिलें, खदानें हैं, सैकड़ों आफिस और दूकानें हैं, सैकड़ों मकान हैं, करोड़ों रुपये लोगोंमें जमा हैं, कुटुम्ब भी बहुत बड़ा है, किंतु उनमेंसे किसी एक मिलके या कोयलेकी खदानके आग लग गयी या किसी मिलमें भारी नुकसान लगकर फर्म फेल हो गया या कुटुम्बमें अपना निकटवर्ती पुरुष या अपना लड़का या स्त्री—कोई मर गया अथवा किसी फर्मके दिवालिया होनेसे अपने बीस लाख रुपये उसमें डूब गये या किसी मिल या मकानको सरकारने अपने अधिकारमें कर लिया तो इनमेंसे प्रत्येक घटना ममताके कारण उसे दुःख देनेवाली ही होती है। वह बेचारा रात-दिन इन सबकी चिन्ताग्निमें जलता रहता है; किंतु जिस मनुष्यके पास कुछ नहीं है, उसका क्या नुकसान होगा और यदि थोड़ा है तो थोड़ा नुकसान होगा। जैसे एक सच्चे साधु हैं, उनके पास एक कमण्डलु है, घास-फूसकी झोपड़ी है, एक-दो ओढ़ने-बिछानेका कपड़ा है। उनका कमण्डलु या कपड़ा कोई ले गया तो उनको किसीसे दूसरा मिल जाता है। कुटिया जल गयी तो दूसरी जगह जाकर बैठ जाते हैं। उनको इनकी इतनी चिन्ता नहीं होती। परंतु जिनके पास अधिक सम्पत्ति है, उनकी पदार्थोंमें अधिक ममता है और जितनी अधिक ममता है, उतना ही अधिक दुःख है।

यदि ममता नहीं है तो न बहुत सम्पत्तिवाले मनुष्यको दुःख है और न थोड़ी सम्पत्तिवालेको ही, किंतु अधिक सम्पत्ति होनेपर अधिक ममता होनेकी सम्भावना है। पर राजा जनक और अश्वपति आदि विपुल सम्पत्ति और राज्य-वैभव होते हुए भी कहीं किञ्चिन्मात्र भी ममता न होनेके कारण सदा सुखी रहते थे, सम्पत्ति आदिके विनाशमें भी कभी उनको दुःख नहीं

होता था। वस्तुतः अहंता-ममता ही समस्त दुःखोंकी जड़ है। इसलिये देहमें अहंता और देहसे सम्बन्ध रखनेवाले प्राणियों, पदार्थोंमें तथा शरीरमें ममताका त्याग करना चाहिये।

एकदेशीय किसी भी शरीर (देह) में जो किसी भी प्रकारका अभिमान है—जैसे मैं मनुष्य हूँ, मैं साधु हूँ, गृहस्थ हूँ, ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, यह 'अहं'भाव है। तथा देहसे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थों और प्राणियों तथा अपने शरीरमें जो मेरापन है—जैसे यह मेरी स्त्री है, यह मेरा पुत्र है, यह मेरी सम्पत्ति है, यह मेरी कुटिया है, यह मेरा कमण्डलु है, यह मेरी मृगछाला है आदि-आदि, यह 'मम' भाव है। ये दोनों भाव साधकके लिये बड़े ही घातक हैं। अतः इनका त्याग करना परमावश्यक है। इनके सिवा, जिसको हम शुद्ध अहंकार कहते हैं उसका भी अन्तमें त्याग हो जाता है। **'अहं ब्रह्मास्मि'** 'मैं ब्रह्म हूँ'—इत्यादि महावाक्यके अनुसार जो ब्रह्ममें अहंबुद्धि है, वह शुद्ध अहंकार है। अद्वैतवादके सिद्धान्तके अनुसार तो यह उच्च कोटिका साधन है, किंतु इस साधनको हम उत्तम मानते हुए भी सबको इसका अधिकारी नहीं समझते, इस कारण इसे करनेके लिये हम सबको नहीं कहते। इस साधनका अधिकारी वही पुरुष है जिसका देहमें अभिमान वास्तवमें नहीं रहा है और जिसकी ब्रह्मके स्वरूपमें ही स्थिति हो गयी है। देहमें अभिमान रहते हुए इस साधनका होना और इस साधनके द्वारा परमगतिकी प्राप्ति होना कठिन है। गीतामें बतलाया गया है—

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते॥ (१२।५)

'उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्ममें आसक्तचित्तवाले पुरुषोंके साधनमें परिश्रम विशेष है; क्योंकि देहाभिमानियोंद्वारा अव्यक्तविषयक गति दुःखपूर्वक प्राप्त की जाती है।'

किंतु जो ब्रह्मभूत पुरुष हैं—ब्रह्मके स्वरूपमें जिनकी एकीभावसे स्थिति हो गयी है, उनके लिये यह साधन सुगम है। उन्हें इस साधनसे

ब्रह्मकी प्राप्ति सहज ही हो सकती है। भगवान् कहते हैं—

प्रशान्तमनसं ह्येनं योगिनं सुखमुत्तमम्।
उपैति शान्तरजसं ब्रह्मभूतमकल्मषम्॥
युञ्जन्नेवं सदात्मानं योगी विगतकल्मषः।
सुखेन ब्रह्मसंस्पर्शमत्यन्तं सुखमश्नुते॥

(६। २७-२८)

'क्योंकि जिसका मन भली प्रकार शान्त है, जो पापसे रहित है और जिसका रजोगुण शान्त हो गया है, ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्मके साथ एकीभावको प्राप्त योगीको उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। वह पापरहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्माको परमात्मामें लगाता हुआ अनायास ही परब्रह्म परमात्माकी प्राप्तिरूप अनन्त आनन्दका अनुभव करता है।'

उस ब्रह्मभूत पुरुषके साधनकी स्थितिका वर्णन अगले श्लोकमें किया है—

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षते योगयुक्तात्मा सर्वत्र समदर्शनः॥

(गीता ६। २९)

'सर्वव्यापी अनन्त चेतनमें एकीभावसे स्थितिरूप योगसे युक्त आत्मावाला तथा सबमें समभावसे देखनेवाला योगी आत्माको सम्पूर्ण भूतोंमें स्थित और सम्पूर्ण भूतोंको आत्मामें कल्पित देखता है।'

साधनावस्थामें यह स्थिति दो प्रकारकी होती है—(१) कल्पित और (२) अकल्पित। कल्पित स्थितिमें साधक कभी ब्रह्ममें स्थित होता है, कभी देहमें; किंतु जब ब्रह्ममें अकल्पित स्थिति हो जाती है, तब फिर वह देहमें स्थित नहीं होता। वह सदा ब्रह्ममें ही स्थित रहता है। इसके लिये यह कसौटी है—

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥

(गीता ६। ३२)

'हे अर्जुन ! जो योगी अपनी भाँति सम्पूर्ण भूतोंमें सम देखता है और सुख अथवा दुःखको भी सबमें सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।'

इस कसौटीसे कसनेपर जो खरा उतरता है, जो इस परीक्षामें उत्तीर्ण हो जाता है, उसको ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाती है। यह बात गीता (६। २८) में ऊपर बतला चुके हैं। सिद्ध होनेके बाद उस पुरुषकी जो कसौटी है, उसका वर्णन गीता अ० १४ श्लोक २४-२५ में देखना चाहिये—

समदुःखसुखः स्वस्थः समलोष्टाश्मकाञ्चनः।
तुल्यप्रियाप्रियो धीरस्तुल्यनिन्दात्मसंस्तुतिः॥
मानापमानयोस्तुल्यस्तुल्यो मित्रारिपक्षयोः।
सर्वारम्भपरित्यागी गुणातीतः स उच्यते॥

'जो निरन्तर आत्मभावमें स्थित, दुःख-सुखको समान समझनेवाला, मिट्टी, पत्थर और सुवर्णमें समान भाववाला, ज्ञानी, प्रिय और अप्रियको एक-सा माननेवाला और अपनी निन्दा-स्तुतिमें भी समान भाववाला है, जो मान और अपमानमें सम है, मित्र और वैरीके पक्षमें भी सम है एवं सम्पूर्ण आरम्भोंमें कर्तापनके अभिमानसे रहित है, वह पुरुष गुणातीत कहा जाता है।'

सिद्ध पुरुषके जो ये स्वाभाविक लक्षण बतलाये गये हैं, साधकके लिये ये ही साधन हैं, इसलिये इनको लक्ष्यमें रखकर साधक पुरुषको उन सिद्ध पुरुषोंकी अन्तिम स्थितिमें स्थित होकर साधन करना चाहिये—इन लक्षणोंका अपनेमें सम्पादन करना चाहिये।

इसके लिये '**अहं ब्रह्मास्मि**' इस प्रकार सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें अहंभावपूर्वक स्थिति रखना भी साधन है। भाव यह कि 'इस देहसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। देहमें जो अहंभाव है और इससे सम्बन्धित वस्तुओं और प्राणियोंमें जो ममभाव है, वह स्वप्नवत् है, मायामात्र है। मैं विज्ञानानन्दघन ब्रह्म हूँ, शरीर और संसारसे मेरा कोई भी सम्बन्ध नहीं।' इस प्रकार एक विज्ञानानन्दघन ब्रह्मका भाव और उसके सिवा संसार और शरीरका अत्यन्त अभाव देखते रहना—यह अद्वैतपरक साधन है।

इस साधनकी हर समय जागृति रहनी चाहिये।

जब देहमें अहंता और देहसे सम्बन्धित पदार्थोंमें ममताका अभाव हो जाता है तब देहमें कोई धर्मी नहीं रहता और धर्मीके न रहनेसे राग-द्वेषका अभाव हो जाता है एवं इच्छा, कामना आदिका अस्तित्व नहीं रहता। उसके मन और बुद्धिमें, सुख-दुःखादि भावोंमें, स्वर्ण, मिट्टी आदि पदार्थोंमें और मान-अपमान, निन्दा-स्तुति आदि दूसरेके द्वारा होनेवाली क्रियाओंमें उपर्युक्त गीता अ० १४ श्लोक २४-२५ के अनुसार पूर्ण समता आ जाती है। तब फिर '**अहं ब्रह्मास्मि**' 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसा भाव भी नहीं रहता; क्योंकि वह वास्तवमें ब्रह्म ही हो जाता है और ब्रह्मकी दृष्टिमें यह शरीर और संसार है ही नहीं, तब सम्बन्ध किससे किसका हो ? वहाँ सम्बन्धका सर्वथा अभाव हो जाता है या यों समझिये कि सम्बन्धका सर्वथा विच्छेद हो जाता है।

इस प्रकार ज्ञानमार्गमें जब '**अहं ब्रह्मास्मि**' आदि महावाक्योंके अनुसार जो शुद्ध अहंभाव है, उसका भी आगे जाकर अभाव हो जाता है, तब उसकी कहीं भी ममता नहीं रहती और वह पुरुष सत्-चित्-आनन्दघन परमात्माको प्राप्त हो जाता है। भगवान्‌ने बताया है—

ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति।
समः सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्॥
भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।
ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्॥

(गीता १८। ५४-५५)

'फिर वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्ममें एकीभावसे स्थित, प्रसन्न मनवाला योगी न तो किसीके लिये शोक करता है और न किसीकी आकाङ्क्षा ही करता है। ऐसा समस्त प्राणियोंमें समभाववाला योगी मेरी पराभक्तिको प्राप्त हो जाता है। उस पराभक्तिके द्वारा वह मुझ परमात्माको मैं जो हूँ और जैसा हूँ ठीक वैसा-का-वैसा तत्त्वसे जान लेता है तथा उस भक्तिसे मुझको तत्त्वसे जानकर तत्काल ही मुझमें प्रविष्ट हो जाता है।'

अहंताके साथ ही उसकी ममताका भी नाश हो जाता है। पहले जब ब्रह्मके स्वरूपमें स्थिति होती है, तब तो उसमें यह शुद्ध अहंकार रहता है कि मैं शरीर नहीं, निर्गुण-निराकार नित्य विज्ञानानन्दघन ब्रह्म हूँ। अर्थात् उसकी देहमें आत्मबुद्धि हटकर ब्रह्ममें आत्मबुद्धि हो जाती है, किंतु बादमें जब उपर्युक्त साधनके द्वारा उसको पराभक्तिरूप परम ज्ञानकी प्राप्ति हो जाती है तब वह ब्रह्ममें विलीन हो जाता है।

इसी प्रकार भक्तियोगी साधकोंको अहंता-ममताका त्याग करके भक्तियोगका साधन करना चाहिये। देह मैं हूँ और देहसे सम्बन्ध रखनेवाले कुटुम्बी और सांसारिक पदार्थ मेरे हैं—यह अभिमान साधकके लिये साधनमें विघ्न है। मनुष्यको जाति, वर्ण, आश्रम, कुटुम्ब, बुद्धि, बल, गुण, आचरण आदि किसी प्रकारका भी अभिमान नहीं करना चाहिये। जैसे—मैं ब्राह्मण हूँ, ऊँची जातिका हूँ, विद्वान् हूँ, साधु हूँ, ज्ञानी भक्त हूँ, महात्मा हूँ, बुद्धिमान् हूँ, सद्गुणी-सदाचारी हूँ, मेरा बड़ा भारी कुटुम्ब है, मेरी स्त्री पतिव्रता है, मेरा पुत्र मातृ-पितृ-भक्त है, मेरे बड़ी-बड़ी मिलें हैं, अनेक मकान हैं, मेरे समान धनी नहीं, बलवान् नहीं, गुणी नहीं, सदाचारी नहीं, श्रेष्ठ नहीं, यों किसी भी प्रकारका अभिमान होना साधनमें महान् विघ्नरूप और खतरेकी चीज है।

इसके सिवा जो शुद्ध अहंता-ममता है, उसका भी अन्तमें त्याग हो जाता है। जैसे—मैं भक्त हूँ, मैं साधक हूँ—यह शुद्ध अहंकार है। यथा—

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

इस प्रकार मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं—यह शुद्ध ममता है। यह शुद्ध अहंता-ममता भी आगे जाकर नहीं रहती। अतः साधकको मैं साधक हूँ, भगवान्‌का भक्त हूँ—यह अभिमान भी नहीं रखना चाहिये, किंतु लोग उसको भक्त कहते हैं, महात्मा कहते हैं, धर्मात्मा कहते हैं, इसलिये लोगोंकी दृष्टिमें उनकी मान्यताके अनुसार, उनके विश्वासके अनुसार आचरण करना चाहिये, जैसे कि राजा युधिष्ठिरने यक्षके प्रति कहा था। जब

उन्होंने यक्षके पूछे हुए सब प्रश्नोंका यथावत् उत्तर दे दिया, तब यक्षने उनसे पूछा—'राजन्! तुम महाबलशाली भीमसेन और अर्जुनको छोड़कर नकुलको क्यों जिलाना चाहते हो?' इसपर युधिष्ठिरने कहा—

धर्मशीलः सदा राजा इति मां मानवा विदुः।
स्वधर्मान्न चलिष्यामि नकुलो यक्ष जीवतु॥

(महा० वन० ३१३। १३०)

'यक्ष! मेरे विषयमें लोग सदा ऐसा समझते हैं कि राजा युधिष्ठिर धर्मात्मा हैं, अतएव मैं अपने धर्मसे विचलित नहीं होऊँगा। इसलिये मेरा भाई नकुल जीवित हो जाय।'

'क्योंकि मेरे पिताके कुन्ती और माद्री दो पत्नियाँ थीं—उनमें कुन्तीका पुत्र मैं जीवित हूँ और माद्रीका पुत्र नकुल जीवित हो जाय तो वे दोनों पुत्रवती बनी रहें। मैं दोनों माताओंके प्रति समान भाव रखना चाहता हूँ—यह मेरा धर्म है।'

अतएव साधक यह भाव रखें कि मैं वास्तवमें भक्त और उच्च कोटिका साधक नहीं हूँ, बनना चाहता हूँ, लोग मुझको भक्त या उच्च कोटिका साधक मानते हैं, किंतु मुझमें बड़ी कमी है, मुझे वैसा बनना चाहिये, वैसा ही आचरण करना चाहिये। मैं तो भगवान्‌के दासोंका दासानुदास हूँ, उनका नाममात्रका किंकर हूँ, जैसा कि हनुमान्‌जीने कहा है—

एकु मैं मंद मोहबस कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ दीनबंधु भगवान॥
जदपि नाथ बहु अवगुन मोरें। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरें॥
नाथ जीव तव मायाँ मोहा। सो निस्तरइ तुम्हारेहिं छोहा॥
ता पर मैं रघुबीर दोहाई। जानउँ नहिं कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनइ प्रभु पोसें॥

(रा० च० मा० किष्किन्धा० २। १-२)

जब हनुमान्‌जी भरतजीसे मिले हैं, उस समय भरतजीने पूछा—

को तुम्ह तात कहाँ ते आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए॥

तब हनुमान्‌जी उत्तरमें कहते हैं—

मारुतसुत मैं कपि हनुमाना। नामु मोर सुनु कृपानिधाना॥
दीनबंधु रघुपति कर किंकर। ..... ॥

(रा० च० मा० उत्तर० १।४-५)

अतः यह समझना चाहिये कि 'मैं भगवान्‌के दासानुदासकी श्रेणीमें आ जाऊँ तो मेरा बड़ा अहोभाग्य है। अर्थात् भगवान्‌के दास हैं हनुमान्‌जी, मैं उनका भी दास बनकर रहूँ तो मेरा अहोभाग्य है, फिर दास होनेकी तो बात ही क्या है? पर मैं ऐसा हूँ नहीं, होना चाहता हूँ। लोग मुझे भक्त कहते हैं, यह मेरे लिये लज्जाकी बात है।' यह तो है उस भक्तके हृदयके भावकी बात और बाहरमें लोग जैसा उसे मानते हैं वैसा ही वह सदाचरण करता है। वह समझता है कि जैसा लोग मुझे मानते हैं, उसीको स्वाँगका रूप समझकर भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ठीक उसी प्रकार बरतना है। किंतु वास्तवमें कहीं भी यह अभिमान नहीं करना है कि मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, वैश्य हूँ, साधु हूँ, गृहस्थ हूँ, सद्गुणी-सदाचारी हूँ, श्रेष्ठ हूँ, भक्त हूँ इत्यादि।

मैं भक्त हूँ, अमुक भक्त नहीं है—यों दूसरोंकी अपेक्षा अपनेमें अच्छेपनका अभिमान आ जाय तो वह साधनमें बाधा है। भगवान् मेरे ही स्वामी हैं और मैं ही उनका सेवक हूँ—यह भाव न रखकर सब भगवान्‌के हैं और भगवान् सबके स्वामी हैं—वे मेरे भी स्वामी हैं—यह भाव रखना अच्छा है। इसकी अपेक्षा भी यह भाव और अच्छा है कि सब भगवान्‌के स्वरूप हैं या सबमें भगवान् विराजमान हैं, इसलिये सबकी सेवा ही भगवान्‌की सेवा है।

सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमंत।
मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत॥

(रा० च० मा० किष्किन्धा० दोहा ३)

यह बड़ा उत्तम भाव है। मैं सबका सेवक हूँ, तुच्छ हूँ, सब मेरे

स्वामी हैं, मैं उनके चरणोंकी धूलके समान हूँ—इस प्रकारके भावसे आगे जाकर शुद्ध अहंकार भी मिट जाता है और यह भाव आ जाता है कि मैं कुछ भी नहीं हूँ, केवल भगवान् ही हैं। उसे अपना ज्ञान भी नहीं रहता है, केवल भगवान्‌का ही ज्ञान रहता है, उसमें अहंता-ममताका अभाव हो जाता है। फिर उसकी सारी चेष्टा भगवान्‌के संकेतके अनुकूल, अपने-आप ही होती रहती है। उसका करना 'होने'में बदल जाता है। जैसे कठपुतलीको सूत्रधार जैसे नचाता है वैसे ही नाचती है, वैसे ही उसकी सारी क्रियाएँ होती हैं। कठपुतलीमें तो अन्तःकरण नहीं है और इसमें अन्तःकरण होते हुए भी काठकी कठपुतलीकी-ज्यों चेष्टा होती है। इसमें कठपुतलीकी अपेक्षा मन-बुद्धि विशेष होनेके कारण मनमें परमात्माका चिन्तन और बुद्धिमें परमात्माका निश्चय विशेषरूपसे रहते हैं। यही असली भक्ति है, यही असली शरणागति है। उस कठपुतलीका अपनी हार-जीतसे भी कोई सम्बन्ध नहीं रहता, उसी प्रकार साधकका भी किसी साधनके फलसे सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये। उसे तो अपनी सम्पूर्ण क्रियाओं, उनके फलों और अपने-आपको भी भगवान्‌के अर्पण कर देना चाहिये। भगवान्‌ने गीतामें बताया है—

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥
तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(१२।६-७)

'परंतु जो मेरे परायण रहनेवाले भक्तजन सम्पूर्ण कर्मोंको मुझमें अर्पण करके मुझ सगुणरूप परमेश्वरको ही अनन्य भक्तियोगसे निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं, हे अर्जुन! उन मुझमें चित्त लगानेवाले प्रेमी भक्तोंका मैं शीघ्र ही मृत्युरूप संसार-समुद्रसे उद्धार करनेवाला होता हूँ।'

वह भक्त सदा-सर्वदा कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता और भगवान्‌की कृपासे भगवान्‌को प्राप्त हो जाता है—

****

सर्वकर्माण्यपि सदा कुर्वाणो मद्व्यपाश्रयः ।
मत्प्रसादादवाप्नोति शाश्वतं पदमव्ययम् ॥

(गीता १८ । ५६)

'मेरे परायण हुआ कर्मयोगी भक्त तो सम्पूर्ण कर्मोंको करता हुआ भी मेरी कृपासे सनातन अविनाशी परमपदको प्राप्त हो जाता है।'

इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुनको वैसा ही बननेकी आज्ञा देते हैं—

चेतसा सर्वकर्माणि मयि संन्यस्य मत्परः ।
बुद्धियोगमुपाश्रित्य मच्चित्तः सततं भव ॥

(गीता १८ । ५७)

'सब कर्मोंको मनसे मुझमें अर्पण करके तथा समबुद्धिरूप योगको अवलम्बन करके मेरे परायण हुआ निरन्तर मुझमें चित्तवाला हो।'

उपर्युक्त प्रकारसे साधन करते-करते जब मनुष्य भगवान्‌के सर्वथा शरण हो जाता है, तब उसकी अहंता-ममताका सर्वथा अभाव होकर उसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है और वह फिर पूर्णतया गीता अ० १२ श्लोक १३-१४ के अनुसार भगवान्‌का ज्ञानी भक्त बन जाता है।

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च ।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी ॥
संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः ।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः ॥

'जो पुरुष सब भूतोंमें द्वेषभावरहित, स्वार्थभावरहित, सबका प्रेमी और हेतुरहित दयालु है तथा ममतासे रहित, अहंकारसे रहित, सुख-दुःखकी प्राप्तिमें सम और क्षमावान् है अर्थात् अपराध करनेवालोंको भी अभय देनेवाला है तथा जो योगी निरन्तर संतुष्ट है, मन-इन्द्रियोंसहित शरीरको वशमें किये हुए है और मुझमें दृढ़ निश्चयवाला है, वह मुझमें अर्पण किये हुए मन-बुद्धिवाला मेरा भक्त मुझे प्रिय है।'

यह भगवान्‌को प्राप्त पुरुषकी कसौटी है। इस प्रकार भगवान्‌का

साधक भक्त अनन्यभक्तिके द्वारा नेत्रोंसे भगवान्‌का साक्षात् दर्शन पाकर और शुद्ध (पवित्र) बुद्धिद्वारा भगवान्‌को यथार्थरूपसे तत्त्वतः जानकर भगवान्‌में प्रवेश कर जाता है।

गीतामें भगवान् भी कहते हैं—

भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवंविधोऽर्जुन।
ज्ञातुं द्रष्टुं च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परंतप॥
मत्कर्मकृन्मत्परमो मद्भक्तः सङ्गवर्जितः।
निर्वैरः सर्वभूतेषु यः स मामेति पाण्डव॥

(११।५४-५५)

'परंतु हे परंतप अर्जुन! अनन्यभक्तिके द्वारा इस प्रकार रूपवाला मैं प्रत्यक्ष देखनेके लिये, तत्त्वसे जाननके लिये तथा प्रवेश करनेके लिये अर्थात् एकीभावसे प्राप्त होनेके लिये भी शक्य हूँ। हे अर्जुन! जो पुरुष केवल मेरे ही लिये सम्पूर्ण कर्तव्यकर्मोंको करनेवाला है, मेरे परायण है, मेरा भक्त है, आसक्तिरहित है और सम्पूर्ण भूतप्राणियोंमें वैरभावसे रहित है, वह अनन्यभक्तियुक्त पुरुष मुझको ही प्राप्त होता है।'

इस प्रकार ज्ञानके मार्गमें तो 'मैं साक्षात् पूर्णब्रह्म परमात्मा हूँ।' यों बड़े-से-बड़ा बनकर अहंकारका नाश करना है और भक्तिके मार्गमें 'मैं सबका सेवक हूँ, दासानुदास हूँ, किंकर हूँ, सबके चरणोंकी धूलि हूँ, कुछ भी नहीं हूँ'—यों छोटे-से-छोटा बनकर अहंकारका नाश करना है। सबसे पहले देश, जाति, वर्ण, आश्रम आदि सांसारिक अहंकारका नाश करना है,फिर अन्तमें मैं भक्त हूँ, साधक हूँ, इस शुद्ध अहंकारका भी नाश हो जाता है। ज्ञानके मार्गमें तो यथार्थ ज्ञानसे सब प्रकारके अहंकारका नाश होता है और भक्तिके मार्गमें भगवान्‌की कृपासे सब प्रकारके अहंकारका नाश होता है। इन दोनों ही साधनोंसे अहंता-ममताका नाश होनेपर उस पुरुषके कर्म अकर्म हो जाते हैं। उसका करना होनेमें बदल जाता है। एवं दोनों ही

प्रकारके साधकोंको परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। अन्तिम फल दोनोंका एक ही है (देखिये गीता १८। ५४-५५ एवं ११। ५४-५५)।

किंतु बाहरमें उसका व्यवहार वैसा ही होता है जैसा उच्च कोटिके सात्त्विक साधकका व्यवहार होता है। लौकिक दृष्टिमें वह ब्रह्मचारी या साधु या गृहस्थ जो भी है, उस स्वाँगके अनुसार उसका श्रेष्ठ ब्रह्मचारी, श्रेष्ठ साधु या श्रेष्ठ गृहस्थका व्यवहार होता है। उसमें स्वाभाविक ही कोई दोष नहीं आते, वह अपने स्वाँगको नहीं लजाता। इस विषयमें एक छोटी-सी कहानी है—

एक बहुरूपिया था। वह अपने स्वाँगको पूरी तरह पेश उतारा करता था, उसमें किञ्चिन्मात्र भी कहीं दोष नहीं आने देता था। एक दिन वह राजाके पास गया और इनाम पानेके उद्देश्यसे उसने राजासे कहा—'महाराज! आप कौन-सा स्वाँग देखना चाहते हैं?' राजा बोले—'तुम केशरी सिंहका स्वाँग लाओ।' बहुरूपियेने निवेदन किया—'सिंहका स्वाँग लानेके लिये न कहिये, यह स्वाँग बड़ा क्रूर है। जब सिंहके रूपमें मैं आऊँगा, तब सिंहके स्वभावके अनुकूल ही चेष्टा करूँगा, उसमें कोई दोष या त्रुटि नहीं आने दूँगा। स्वाँगको नहीं लजाऊँगा। उस समय यदि स्वाँगकी रक्षाके लिये मुझसे कोई अपराध हो जाय तो उसे आप क्षमा कर देंगे।' राजाने कहा—'बहुत अच्छा, स्वाँगकी रक्षाके लिये तुमसे कोई अपराध होगा तो वह क्षम्य समझा जायगा। तुम सिंहका स्वाँग लाओ।' यह बात सारे शहरमें फैल गयी। इससे शहरके सब लोग सचेत हो गये।

दूसरे दिन वह सिंह बनकर गर्जता, दहाड़ता हुआ बाजारको लाँघकर राजदरबारमें पहुँचा। शहर और सभाके सभी लोग चुपचाप स्तम्भित हुए-से उसको देखते रहे, किंतु राजाके एक छोटे-से लड़केने 'मैं राजकुमार हूँ' इस अभिमानमें आकर सिंहकी गुदामें एक दातुन घुसा दिया, तब सिंहने दुहत्थीसे—आगेके दोनों पंजोंसे उस राजकुमारपर ठीक सिंहकी भाँति प्रहार किया, जिससे उसके प्राण निकल गये। सिंह दहाड़ता हुआ वापस लौट गया।

राजकुमारकी मृत्यु हो जानेसे राजपरिवार और राजसभाके सदस्योंको

बड़ा ही दुःख और क्षोभ हुआ। दूसरे दिन वह बहुरूपिया भी अपने असली रूपमें आया। उसने खूब दुःख प्रकट किया और निवेदन किया कि 'महाराज ! इसीलिये मैं आपसे प्रार्थना करता था कि सिंहका स्वाँग लानेके लिये न कहिये। मुझसे बड़ा भारी अपराध बन गया, जो मैं राजकुमारकी मृत्युमें कारण बना। अब तो मैं बहुरूपिया हूँ, अब आप मेरा चाहे जितना अपमान करें, दण्ड दें, किंतु उस समय मैं केशरी सिंहके स्वाँगमें था, केशरी सिंहके स्वभावके अनुसार चेष्टा कर रहा था। आप बतलाइये यदि कोई केशरी सिंहकी गुदामें दातुन घुसा दे तो उसे केशरी सिंह कैसे बरदाश्त कर सकता है ? मैं स्वाँगको नहीं लजाता, स्वाँगको लजाऊँ तो न तो मैं स्वाँगको ही सफल बना सकता हूँ, न जी ही सकता हूँ। मैं भगवान्‌का उपासक हूँ। उन्हींकी कृपासे मेरा स्वाँग सफल होता है और मुझे उसमें विजय प्राप्त होती है।' राजा यह सब सुन रहे थे, किंतु उनके हृदयमें राजकुमारकी मृत्युके कारण बहुत दुःख और क्षोभ था, पर वे वचनबद्ध होनेके कारण कुछ भी कर न सके। बहुरूपियेने पूछा—'महाराज ! अब दूसरा कौन-सा स्वाँग लाऊँ ?' इसपर राजकुमारके मरणशोकसे दुःखित मन्त्रीने कहा—'तुम महात्मा शुकदेवजीका स्वाँग लाओ।' बहुरूपिया चला गया और पन्द्रह दिन बाद श्रीशुकदेवजीके ही-जैसा एक उच्च कोटिके ज्ञानी महात्माका स्वाँग बनाकर निकला और शहरके किनारे, उत्तरकी ओर बालूके टीलेपर जाकर बैठ गया। इससे शहरमें तुरंत यह खबर फैल गयी कि एक बहुत बड़े उच्च कोटिके महात्मा बालूके टीलेपर बैठे हैं। यह जानकर दर्शनार्थियोंकी वहाँ भीड़ लग गयी। जब यह खबर मन्त्रीने सुनी तो उन्होंने राजासे कहा—'राजन् ! मेरी समझमें वह बहुरूपिया ही स्वाँग धरकर आया है, राजकुमारको मारनेका मेरे हृदयमें बहुत भारी दुःख था और है, इस उद्देश्यसे ही मैंने उसे शुकदेवजीका स्वाँग लानेको कहा था। यह स्वाँग बहुत कठिन है, इससे वह कहीं इसे लजा दे तो इसे दण्ड दिया जा सकता है, अतः आप भी मेरे साथ उसका दर्शन करने चलिये ताकि उसको विशेष लोभ देकर स्वाँगके स्वरूपसे

विचलित किया जाय।' यों बातचीत करके वे दोनों वहाँ गये, मन्त्री और राजाने महात्माको नमस्कार किया और उनके चरणोंमें रत्नों और सोनेकी मुहरोंकी थैलियाँ रख दीं वे महात्मा उन थैलियोंकी अवहेलना करके झट वहाँसे उठकर जंगलकी ओर चल दिये। मन्त्री उनके पीछे-पीछे गये। जब एकान्त स्थान आ गया, तब मन्त्रीने उनके कानमें कहा—'तू बहुरूपिया है, महात्मा शुकदेवजीका स्वाँग लेकर आया है, यह मैं जानता हूँ। इन थैलियोंमें कई लाख रुपयोंका धन है, अतः मेरा यह अनुरोध है कि तू यह सब द्रव्य स्वीकार कर ले, फिर हम दोनों आधा-आधा बाँट लेंगे।' उस महात्माके रूपमें आये हुए बहुरूपियेने मन्त्रीकी बात बिलकुल अनसुनी कर दी और विरक्तभावसे जंगलमें चला गया। तब राजा और मन्त्री लौट आये।

दो दिन बाद फिर वह बहुरूपिया राजभवनमें आया और बोला—'महाराज ! शुकदेवजीका स्वाँग आपको कैसा लगा ?' राजाने कहा— 'बहुत अच्छा'। तब बहुरूपियेने फिर पूछा—'अब कौन-सा स्वाँग लाऊँ ?' वहाँ राजाका भक्त एक नाई था। उसने सोचा 'इसने राजकुमारकी हत्या कर दी—यह इसका बड़ा अपराध है, इसे विशेष दण्ड मिलना चाहिये।' यह सोचकर उसने कहा—'पतिव्रता सतीका स्वाँग लाओ।' राजा और मन्त्रीने भी इसका समर्थन किया। बहुरूपिया इसे सहर्ष स्वीकार करके घर चला गया।

कुछ दिनों बाद उसने देखा एक मुर्दा तैरता हुआ नदीके किनारे आ लगा है, वह उसे घरपर ले गया। उसने पतिके रूपमें उसे सजाकर स्वयं सोलह शृङ्गारोंसे सम्पन्न पतिव्रता सती स्त्रीका स्वाँग बनाया और पतिकी वैकुण्ठी बनाकर बड़ी धूमधाम और गाजे-बाजेके साथ बजारमें होते हुए श्मशान जानेके लिये जुलूस निकाला। यह खबर तुरंत सारे शहरमें फैल गयी। हजारों नर-नारी उस मुर्देके साथ होकर श्मशानघाटपर गये। जब यह समाचार मन्त्रीको मिला तब उसने राजासे कहा—'यह वही बहुरूपिया है, पतिव्रता सतीका स्वाँग लेकर आया है, मैं इसे जलानेका प्रबन्ध करनेके लिये स्वयं जाता हूँ।' यों कहकर मन्त्री बहुत-से आदमियोंको लेकर मरघटपर

गये। करीब सौ मन काठका ढेर लगवाकर चिता बनवा दी। वह पतिव्रता सती स्त्री अपने पतिके शवको गोदमें लेकर चितामें भस्म होनेके लिये बैठ गयी। चिताके चारों ओर आग लगा दी गयी। उसी समय बड़े जोरसे आँधी-तूफान आया। उसके कारण मन्त्री, मन्त्रीके साथ आये हुए आदमी तथा शहरके सब लोग वहाँसे भाग गये। आँधीके साथ घोर वर्षा होने लगी। वर्षा इतने जोरसे हुई कि उसने चिताकी धधकती हुई लपटोंको शान्त कर दिया। तब वह बहुरूपिया चिताके उस ओरसे, जिस ओर आग नहीं लग पायी थी, नीचे उतर पड़ा और उसने फिर चिताके चारों ओर आग प्रज्वलित कर दी। तदनन्तर वह अपने घर लौट गया। उस अग्निसे वह मुर्दा भस्म हो गया। दूसरे दिन मन्त्री और राजाने जाकर देखा—वहाँ भस्म और मुर्देकी हड्डीके सिवा कुछ नहीं है।

कुछ ही दिनों बाद वह बहुरूपिया अपने रूपमें राजभवनमें आया और बोला—'महाराज! सतीका स्वाँग कैसा रहा?' राजाने कहा—'बहुत अच्छा।' राजाने फिर पूछा—'तुम जीते कैसे रहे?' उसने कहा—'महाराज! मैं स्वाँग नहीं लजाता, इसलिये भगवान् मेरी रक्षा करते हैं। मैं स्वर्गमें गया था, आपके पिता-पितामहसे भी मिला था, उनके दाढ़ी-मूँछ, नख बड़े-बड़े हो रहे थे। मैंने उनसे पूछा था कि आप सब सकुशल हैं न? कोई कष्ट तो नहीं है न? आपका क्या संदेशा राजासे कहूँ?' उन्होंने कहा—'यहाँ और सब तो आनन्द है, केवल नाईका कष्ट है, एक नाईको यहाँ भेज देना।' यह सुनकर राजाने उसी नाईसे कहा—'तुम जाकर उनकी सेवा करो।' मन्त्रीने नाईसे कहा—'जैसे यह स्वर्गमें गया, वैसे ही तुम कल स्वर्गमें जाओ।' तब नाईने बहुरूपियेको अलग ले जाकर कहा—'तुम मुझे क्यों मरवाते हो?' बहुरूपियेने उत्तर दिया—'तुमने ही मेरी अनिष्ट-कामना की थी, मेरे विनाशके लिये सतीका स्वाँग लानेके लिये कहा था, इसीलिये मैं तुमको भेजता हूँ। जो मनुष्य दूसरेके अनिष्टके लिये चेष्टा करता है, उसका अपना ही अनिष्ट होता है।' नाईने कहा—'मेरा अपराध क्षमा करो,

मैं तुम्हारे शरण हूँ, मुझे इस घोर विपत्तिसे बचाओ।'

तब बहुरूपियेने राजसभामें आकर राजाके सामने मन्त्रीसे आदिसे अन्ततक सब सच्ची-सच्ची घटना सुना दी कि 'मैं स्वाँग नहीं लजाता, अतः भगवान् मेरी सब प्रकारसे रक्षा करते हैं। जब आपलोग चितामें आग लगाकर आँधी-वर्षाके भयके कारण चले आये, तब बड़े जोरसे वर्षा हुई, जिससे आग शान्त हो गयी और मैं बच गया। फिर मैंने चिताके चारों तरफ आग लगा दी जिससे वह मुर्दा जल गया। स्वर्गमें जाकर कोई वापस नहीं आ सकता, मैं तो भगवान्‌की कृपासे बच गया था, इस बेचारे नाईके प्राण नहीं लेने चाहिये।'

इसपर राजाने उससे कहा—'तुम्हारे स्वाँगसे हम बहुत प्रसन्न हैं। जो घटना होनेवाली थी, वह हो गयी। अब तुमको उसका कोई शोक नहीं करना चाहिये।' यों कहकर राजाने प्रसन्नतापूर्वक उस बहुरूपियेको हजारों रुपयोंका इनाम दिया, वह इनाम लेकर अपने घर चला गया।

इस कहानीसे एक तो यह शिक्षा मिलती है कि ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, संन्यास—जिस किसी आश्रममें और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—जिस किसी वर्णमें मनुष्य हो, उसे अपना स्वाँग नहीं लजाना चाहिये। जो स्वाँग नहीं लजाता, उसकी भगवान् सब प्रकारसे रक्षा करते हैं; जैसे भगवान्‌ने उस बहुरूपियेकी रक्षा की। एवं दूसरी यह शिक्षा मिलती है कि दूसरेके अनिष्टका चिन्तन कभी नहीं करना चाहिये, नहीं तो, जैसे नाईको भय प्राप्त हुआ, वैसे भय प्राप्त हो सकता है।

अतएव उपर्युक्त विवेचनसे यह समझना चाहिये कि ज्ञानी महात्मा पुरुष लोकसंग्रहके लिये स्वाँगकी भाँति काम करते हैं। लोग उनको जिस वर्ण, आश्रममें समझते हैं, उनके सामने वे वैसा ही आचरण करते हैं। अपना असली परिचय अपने अन्तरङ्ग लोगोंके सिवा अन्य किसीको नहीं देते। किंतु जो व्यक्ति 'मैं ज्ञानी हूँ, महात्मा हूँ, योगी हूँ, महापुरुष हूँ, अधिकारी पुरुष हूँ'—ऐसा कहते हैं, वे वास्तवमें योगी, ज्ञानी, महात्मा आदि नहीं हैं, वे तो

मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा-सेवाके किङ्कर, दम्भी, पाखण्डी हैं। जो श्रेष्ठ पुरुष होते हैं, वे कञ्चन-कामिनीके लोभसे या अपनी मान-बड़ाई-प्रतिष्ठा बढ़ानेके लिये दूसरेकी अपनेमें श्रद्धा बढ़ानेके हेतु नहीं बनते; क्योंकि उनको न कुछ करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है और न कुछ न करनेसे ही प्रयोजन रहता है। उनमें स्वार्थका अत्यन्त अभाव हो जाता है। गीतामें भगवान्‌ने बतलाया है—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यपाश्रयः॥

(३।१८)

'उस महापुरुषका इस विश्वमें न तो कर्म करनेसे कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मोंके न करनेसे ही कोई प्रयोजन रहता है तथा सम्पूर्ण प्राणियोंमें भी इसका किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं रहता।'

अतः परमात्माकी प्राप्तिके लिये मनुष्यको ज्ञान या भक्तिके साधनद्वारा अहंता-ममताका अत्यन्त अभाव करना चाहिये।

सर्वभूतहिते रताः

भगवत्प्राप्तिके अनेक मार्ग हैं, 'सर्वभूतहित' भाव सभी मार्गोंमें आवश्यक है। भगवान् प्राणिमात्रमें स्थित हैं, अतएव किसी भी प्राणीका हित करना और उसे सुख पहुँचाना भगवान्‌की बड़ी सेवा है। प्राणिजगत्‌में जहाँ जिस वस्तुका अभाव है, वहाँ भगवान् उसी वस्तुके द्वारा अपनी पूजा चाहते हैं और उस पूजामें केवल भगवत्प्रीतिके अतिरिक्त अन्य कोई कामना नहीं रहती तो उसी निःस्वार्थ सेवासे आत्माका उद्धार या भगवत्प्राप्ति अनायास ही हो जाती है। श्रीतुलसीदासजीने कहा है—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

'जिनके हृदयमें दूसरेका हित बसता है, उनको जगत्‌में कुछ भी दुर्लभ नहीं है।' स्कन्दपुराणमें बतलाया है—

परोपकरणं येषां जागर्ति हृदये सताम्।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदः स्युः पदे पदे॥
तीर्थस्नानैर्न सा शुद्धिर्बहुदानैर्न तत् फलम्।
तपोभिरुग्रैस्तन्नाप्यमुपकृत्या यदाप्यते॥

(काशी० ६। ४-५)

'जिन सज्जनोंके हृदयमें परोपकारकी भावना जाग्रत् रहती है, उनकी समस्त आपदाएँ नष्ट हो जाती हैं और उन्हें पद-पदपर सम्पदाएँ प्राप्त होती रहती हैं। न तो अनेक तीर्थोंमें स्नान करनेसे वैसी पवित्रता होती है और न प्रचुर दानों तथा उग्र तपस्याओंसे ही वैसा फल प्राप्त होता है, जैसा कि दूसरोंका उपकार करनेसे होता है।'

अन्य वस्तुओंकी तो बात ही क्या, निष्कामभावसे परोपकार करनेवालेको तो परमात्माकी प्राप्ति भी हो सकती है। श्रीमद्भगवद्गीताके पाँचवें अध्यायके २५ वें श्लोकमें भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः॥

'जिनके सब पाप नष्ट हो गये हैं, जिनके सब संशय ज्ञानके द्वारा निवृत्त

हो गये हैं, जो सम्पूर्ण प्राणियोंके हितमें रत हैं और जिनका वशमें किया हुआ मन निश्चलभावसे परमात्मामें स्थित है, वे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शान्त ब्रह्मको प्राप्त होते हैं।'

इससे यह सिद्ध होता है कि उपर्युक्त लक्षणोंसे युक्त पापरहित ऋषिजन सारे भूतोंके हितमें रत रहनेके प्रभावसे निर्वाणब्रह्मको प्राप्त हो जाते हैं। इसलिये मनुष्यको उचित है कि स्वार्थका सर्वथा परित्याग करके अपने तन, मन, धनसे दुःखी, अनाथ और आतुर प्राणियोंकी सेवा करे; अर्थात् अपने तन, मन, धनको अभावग्रस्त दुःखी प्राणियोंके दुःखनाश और हित-साधनमें ही लगा दे। जिन महानुभावोंका यह उद्देश्य है कि मेरा जीवन और सर्वस्व दीन-दुःखी, अनाथ-आतुरोंके लिये ही है, उन्हींका जीवन धन्य है। इस विषयपर एक सुन्दर कहानी है।

एक उच्च कोटिके विरक्त ज्ञानी महात्मा थे। उनमें गीताके उपर्युक्त श्लोकके सारे लक्षण वर्तमान थे। उन समदर्शी महात्माके सत्सङ्गमें बड़े-से-बड़े राजा-महाराजासे लेकर गरीब-से-गरीब मनुष्यतक भी आया करते थे। महात्माजी आनेवाले सत्सङ्गियोंको इसी श्लोकके आधारपर उपदेश दिया करते थे। उनका प्रधान कथन यह होता था कि निष्कामभावसे दुःखी-आतुर प्राणियोंको सुख पहुँचानेसे परमात्मा मिलते हैं।

एक दिनकी बात है कि उस नगरके राजा उन महात्माजीके पास आये। राजाने महात्माजीके चरणोंमें अभिवादन करके पूछा—'क्या इस युगमें भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है ? और यदि हो सकती है तो उसका सरल उपाय क्या है ?' महात्माजीने उत्तर दिया—'परमात्मा प्राणिमात्रके हृदयमें अवस्थित है। अतः सम्पूर्ण प्राणिमात्रकी निष्कामभावसे तत्परतापूर्वक सेवा करनेपर परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है; प्राणियोंमें भी जो दुःखी, अनाथ और आतुर हों, उनकी सेवा करनेसे और भी शीघ्र कल्याण हो सकता है।' इस उपदेशको सुनकर राजा अपने स्थानपर लौट गये और उसी दिनसे वे अपने तन, मन, धनद्वारा निष्कामभावसे प्राणिमात्रकी एवं दुःखी और आतुरोंकी सेवा विशेषरूपसे करने लगे।

एक वर्ष बीतनेपर राजाने एक दिन महात्माजीके पास जाकर कहा—'मुझे आपके आज्ञानुसार अनुष्ठान करते सालभर हो गया, किंतु अभीतक परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई।' महात्माजी बोले—'राजन्! धैर्य रखो और निष्कामभावपूर्वक दुःखियोंकी सेवा उत्साहके साथ विशेषरूपसे करते रहो। करते-करते तुम्हारा अन्तःकरण शुद्ध होकर परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।' यह सुनकर राजा घर लौट गये एवं पहलेकी अपेक्षा और भी विशेष उत्साहके साथ दुःखियोंकी सेवा करने लगे।

इस प्रकार करते फिर एक वर्ष व्यतीत हो गया, परंतु परमात्माकी प्राप्ति नहीं हुई। तब राजाने पुनः महात्माजीके पास जाकर प्रार्थना की कि 'महाराज! आपके आज्ञानुसार सेवाके अनुष्ठानका कार्य चालू है, मैंने आपके आदेशके अनुसार अपना तन, मन, धन, सब कुछ सेवामें लगा रखा है। अबतक राज्यकी अधिकांश धनराशि परोपकारके कार्योंमें व्यय हो चुकी है, फिर भी परमात्माकी प्राप्ति होनेका मुझे कोई भी लक्षण नहीं दिखलायी पड़ता।' इसपर महात्माजीने कहा—'तुम दृढ़ विश्वास रखो, जरा भी शङ्का न करो; तुम्हें निश्चय ही परमात्माकी प्राप्ति होगी। तुम बहुत ही सुन्दर रीतिसे तथा शुद्ध भावसे दीन-दुःखियोंकी सेवा कर रहे हो; परंतु वास्तवमें जिस प्रकारके दुःखी, अनाथ और आतुरकी जैसी सेवा होनी चाहिये, वैसी सेवा अबतक तुम्हारे द्वारा नहीं बन पड़ी है। परंतु परम उल्लास तथा श्रद्धाके साथ सदा-सर्वदा करते-करते कभी-न-कभी वैसी सेवा भी बन ही जायगी। अतः तुम वशमें किये हुए मन, बुद्धि और इन्द्रियोंको निःस्वार्थभावसे केवल भगवत्प्रीत्यर्थ दुःखियोंकी सेवामें भलीभाँति लगा दो।'

महात्माजीके अमृतमय वचनोंका श्रवण करके राजा बड़े प्रसन्न हुए और घर आकर महात्माजीके आदेशानुसार ही पुनः अत्यन्त उत्साहसे सबके हितके कार्यमें लग गये। वे अब दीन, दुःखी, दरिद्र और अनाथोंके रूपमें नारायणकी विशेषरूपसे सेवा करने लगे।

उसी नगरमें एक दुःखी अनाथ विधवा स्त्री रहती थी, जो प्रतिदिन

जंगलसे सूखा ईंधन लाकर शहरमें बेचा करती और उसीसे अपना तथा अपने इकलौते नन्हेंसे पाँच वर्षके लड़केका निर्वाह किया करती। वह जो कुछ कमाती, उससे उन दोनोंकी उदरपूर्ति कठिनतासे होती थी, अतः उसके पास एक भी पैसा बच नहीं पाता था। एक दिन जब वह लड़केको साथ लिये ईंधन लाने जंगलको जा रही थी, तब उस बालकने रास्तेमें एक धनी लड़केको लट्टू, फिरकी आदि खिलौनोंसे खेलते देखा। उसे देखकर उस बालकने अपनी माँसे लट्टू, फिरकी आदि ला देनेको कहा। बच्चेकी बात सुनकर माता बोली—'बेटा ! मैं गरीब हूँ, मेरे पास पैसे कहाँ ? मैं तो लकड़ी बेचकर जो पैसे लाती हूँ, उससे पेट ही कठिनतासे भर पाता है, फिर खिलौने कहाँसे खरीदूँ ?' निर्दोष लड़का धनी और गरीबका भेद समझता नहीं था। उसे तो खिलौनेका आग्रह था। वह रोने लगा और वहीं लोट गया। माता किसी तरह उठाकर उसे घर लायी। उसने लड़केको बहुत कुछ समझाया; पर लड़केने एक भी न सुनी। इसी कारण उस दिन वह लकड़ी लाने भी नहीं जा सकी; दिनभर दोनोंको फाँका करना पड़ा। बच्चेने अपना हठ नहीं छोड़ा, वह रोता ही रहा। उसके दुःखसे दुःखी होकर माँ भी रोती रही। उसके पास पैसा तो था नहीं कि वह बच्चेका हठ पूरा कर सकती। अर्धरात्रिका समय था, निस्तब्ध रात्रि थी। सब सो रहे थे, परंतु झोंपड़ीके कोनेमें गरीब माँ-पुत्र रो रहे थे। लड़केकी रोनेकी आवाज तीव्र थी। महल समीप ही था। महलमें सोये राजाके कानोंमें रोनेकी ध्वनि पहुँची। करुणापूर्ण रुदनकी ध्वनिसे राजा चौंक पड़े और उठकर इधर-उधर देखने लगे। राजाने कोतवालको बुलाकर कहा—'देखो , किसी दुःखी आतुर व्यक्तिके रोनेकी आवाज आ रही है, तुम शीघ्र जाओ और उसे आश्वासन देकर मेरे पास लाओ।' कोतवाल तुरंत उसके पास पहुँच गया और उससे बोला—'चलो ! महाराज साहब तुमको बुला रहे हैं।' बेचारी ईंधन बेचनेवाली स्त्री कोतवालको देखते ही भयसे काँपने लगी और बोली—'सरकार ! यह छोटा बच्चा है; रोता है, इसके अपराधको क्षमा करें।' कोतवालने धीरज

बँधाते हुए कहा—'तुम भय मत करो, मेरे साथ चलो, राजाने दया करके ही तुमको बुलाया है।' किंतु उस बेचारीकी घबराहट दूर नहीं हुई। उसने सोचा—बच्चेके रोनेसे राजाकी नींद टूट गयी है, इसलिये वे दण्ड देंगे; पर उपाय ही क्या, जब वे बुला रहे हैं तो जाना ही पड़ेगा। वह राजाके पास जाने लगी। कोतवालके वचनोंसे उस स्त्रीका रोना तो बंद हो गया, परंतु भयके मारे उसका शरीर काँप रहा था और लड़का रोता हुआ उसके पीछे-पीछे चला जा रहा था।

कोतवालके साथ दोनों राजमहलमें पहुँचे। राजाने इस करुणायुक्त दृश्यको देखकर उस भयभीत स्त्रीको आश्वासन देते हुए कहा—'बेटी! डर मत। बता, यह बच्चा किसलिये रो रहा है? मैं इसका कारण जानना चाहता हूँ।' इसपर उस स्त्रीने सारी बात ज्यों-की-त्यों बतला दी। वह बोली—'महाराज! मैं जंगलसे सूखी लकड़ियाँ लाकर बेचा करती हूँ, उसीसे अपना और इसका पेट भरती हूँ। आज मैं जब लकड़ी लाने जंगलको जा रही थी, तब रास्तेमें एक धनी लड़केको लट्टू, फिरकी आदिसे खेलते देखकर यह मचल उठा और इसने हठ कर लिया कि मुझे ऐसे ही खिलौने ला दे। इसी कारण यह रोने लगा। इसीसे मैं आज लकड़ी लाने भी न जा सकी, जिसके कारण यह भूखसे भी व्याकुल है। आधी रात बीत गयी; यह मानता नहीं, बराबर रो ही रहा है। मैंने बहुत प्रयत्न किया कि यह न रोये, पर छोटा बच्चा है, बेसमझ है, क्या किया जाय।'

राजाने तुरंत महलके अंदरसे साग, पूड़ी, मिठाई मँगवाकर दी और कहा—'मैं अभी खिलौने मँगा देता हूँ।' विधवा माताने लड़केको खिलानेकी बहुत चेष्टा की, किंतु हठी बच्चेने माँग पूरी न होनेके कारण कुछ नहीं खाया। माँ भी लड़केको बिना खिलाये कैसे खाती। तब राजाने कोतवालसे कहा—'अभी बाजार जाओ और यह लड़का जो-जो खिलौने चाह रहा है, वे जहाँ जिसके यहाँ भी मिलें, एक छबड़ी भरकर ले आओ।' कर्तव्यपरायण कोतवालने तत्काल खिलौनेके दूकानदारके घर जाकर उसे

जगाया और उसी समय दूकान खोलकर एक छबड़ी खिलौने देनेको कहा। राजाकी आज्ञा थी, उसने तुरंत एक छबड़ी खिलौने दे दिये। कोतवालने उनका उचित मूल्य चुकाकर छबड़ी लाकर राजाके सामने रख दी। राजाने वे सारे खिलौने बालकको सौंप दिये। बालक दोनों हाथोंमें जितना ले सका, लेकर हँसने और नाचने लगा। बालककी प्रसन्नता देखकर माताकी भी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही।

तदनन्तर राजाने उन दोनोंको यथेष्ट भोजन कराकर तृप्त किया तथा बचे हुए खिलौने और भोजन उस बच्चेकी माँको सौंप दिये। माता और पुत्र—दोनों अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो अपनी झोंपड़ीमें लौट गये। राजाकी अनुमति पाकर कोतवाल भी अपने स्थानको लौट गया। उसी समय राजाको उस विज्ञानानन्दघन परमात्माके स्वरूपकी प्राप्ति हो गयी तथा उनके आनन्द और शान्तिकी सीमा नहीं रही।

प्रातःकाल होते ही राजा महात्माजीके पास गये और दण्डवत् प्रणाम करके अपनी सारी घटना आद्योपान्त उन्हें कह सुनायी। तब महात्माजी बोले—'राजन्! तुमने बहुतेरे लोगोंकी सेवा की और परोपकारके निमित्त बहुत-सा धन खर्च किया, किंतु जैसी सेवा आज हुई है, वैसी इसके पहले नहीं हुई थी।' महात्माजीके वचन सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और फिर अपने घरपर चले आये।

जिस समय राजा अपनी घटना सुना रहे थे, उस समय वहाँ महात्माजीकी सेवामें शहरसे दो कोस दूर रहनेवाला एक नितान्त निर्धन देहाती खोमचेवाला भी बैठा था। उसने इस घटनाको बड़े चावसे सुना और महात्माजीसे कहा—'महाराज! क्या मुझ-जैसे गरीब आदमीको भी भगवान् मिल सकते हैं?' महात्माजी बोले—'क्यों नहीं मिल सकते?' भगवान्‌के यहाँ गरीब और धनीका भेद थोड़े ही है। वे भावके भूखे हैं। एक बार राजा चोल और विष्णुदास नामके एक गरीब ब्राह्मणमें भक्तिविषयको लेकर भगवद्दर्शनके लिये परस्पर होड़ लग गयी थी, जिसमें

अन्तमें उस गरीब विष्णुदासकी ही विजय हुई और उस गरीब ब्राह्मणको ही भगवान्‌ने पहले दर्शन दिये।

यह सुनकर खोमचेवालेने पूछा—'महाराजजी ! वह राजा चोल कौन था, गरीब विष्णुदास कौन था और उनमें परस्पर किस प्रकार होड़ लगी थी तथा उस गरीब ब्राह्मणको भगवान्‌ने राजासे पहले किस तरह दर्शन दिये थे ? कृपया वह सब कथा मुझे विस्तारसे सुनाइये।'

महात्माजीने कहा—पहले काञ्चीपुरीमें चोल नामक एक चक्रवर्ती राजा हो गये हैं; उनके अधीन जितने देश थे, वे भी चोल नामसे ही विख्यात हुए। राजा चोल जब इस भूमण्डलका शासन करते थे, उस समय कोई भी मनुष्य दरिद्र, दुःखी, पापमें मन लगानेवाला अथवा रोगी नहीं था। उन्होंने इतने यज्ञ किये थे कि जिनकी कोई गणना नहीं हो सकती।

एक समयकी बात है। राजा चोल 'अनन्तशयन' नामक तीर्थमें गये, जहाँ जगदीश्वर श्रीविष्णु शेषशायीके रूपमें विराज रहे थे। वहाँ भगवान् श्रीविष्णुके उस दिव्य विग्रहकी राजाने विधिपूर्वक पूजा की। उन्होंने स्वर्णके बने हुए फूलों तथा मणि-मोतियोंसे भगवान्‌का पूजन करके उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। प्रणाम करके ज्यों ही वे बैठे, उसी समय काञ्चीनगरीके निवासी ब्राह्मण विष्णुदास भगवान्‌की पूजाके लिये हाथमें तुलसीदल और जल लिये वहाँ आये। उन ब्रह्मर्षिने विष्णुसूक्तका पाठ करते हुए देवदेव भगवान्‌को स्नान कराया और तुलसीकी मञ्जरी तथा पत्तोंसे उनकी विधिवत् पूजा की। राजा चोलने पहले जो रत्नोंसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह सब तुलसीपत्तोंसे ढँक गयी। यह देखकर राजा कुपित होकर बोले—'विष्णुदास ! मैंने मणियों तथा सुवर्णसे भगवान्‌की पूजा की थी, वह कितनी शोभा पा रही थी ! किंतु तुमने तुलसीपत्र चढ़ाकर सब ढक दी; बताओ, ऐसा क्यों किया ? मालूम होता है तुम बड़े मूर्ख हो, भगवान् विष्णुकी भक्तिको बिलकुल नहीं जानते। तभी तो तुम अत्यन्त सुन्दर सजी-सजायी पूजाको पत्तोंसे ढके जा रहे हो। तुम्हारे इस बर्तावसे मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है।'

विष्णुदास बोले—'राजन्! आपको भक्तिका कुछ भी पता नहीं है, केवल राज्यलक्ष्मीके कारण आप घमंड कर रहे हैं। बताइये तो आजसे पहले आपने कितने वैष्णव-व्रतोंका पालन किया है?'

राजाने कहा—'ब्राह्मण! यदि तुम विष्णुभक्तिके अत्यन्त गर्वमें आकर ऐसी बात करते हो तो बताओ, तुममें कितनी भक्ति है? तुम तो दरिद्र हो, निर्धन हो। तुमने श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाले यज्ञ और दान आदि कभी नहीं किये हैं तथा पहले कहीं कोई देवालय भी नहीं बनवाया है। ऐसी दशामें भी तुम्हें अपनी भक्तिका इतना घमंड है? अच्छा, तो आज यहाँ जितने भी श्रेष्ठ ब्राह्मण उपस्थित हैं, वे सभी कान खोलकर मेरी बात सुन लें। देखना है, मैं पहले भगवान् विष्णुका दर्शन पाता हूँ या यह; इससे लोगोंको स्वयं ही ज्ञात हो जायगा कि हम दोनोंमेंसे किसमें कितनी भक्ति है।'

यह कहकर राजा चोल अपने राजभवनको चले गये और उन्होंने महर्षि मुद्गलको आचार्य बनाकर वैष्णव-यागका अनुष्ठान आरम्भ किया, जिसमें बहुत-से ऋषियोंका समुदाय एकत्रित हुआ, बहुत-सा अन्न खर्च किया गया और प्रचुर दक्षिणा बाँटी गयी।

'उधर विष्णुदास भी वहीं भगवान्‌के मन्दिरमें ठहर गये और श्रीविष्णुको संतुष्ट करनेवाले शास्त्रोक्त नियमोंका भलीभाँति पालन करते हुए सदा ही व्रतका अनुष्ठान करने लगे। माघ और कार्तिकके व्रत, तुलसीके बगीचेका भलीभाँति पालन, एकादशीका व्रत, '**ॐ नमो भगवते वासुदेवाय**'—इस द्वादशाक्षर मन्त्रका जप तथा गीत-नृत्य आदि माङ्गलिक उत्सवोंके साथ षोडशोपचारद्वारा प्रतिदिन श्रीविष्णुकी पूजा—यही उनकी जीवनचर्या थी। वे इन्हीं व्रतोंका पालन करते थे। चलते, खाते और सोते समय भी उन्हें निरन्तर श्रीविष्णुका स्मरण बना रहता था। वे समदर्शी थे और सम्पूर्ण प्राणियोंमें भगवान् श्रीविष्णुको स्थित देखते थे। उन्होंने भगवान् श्रीविष्णुके संतोषके लिये उद्यापन-विधिसहित माघ और कार्तिकके विशेष-विशेष नियमोंका भी सर्वदा पालन किया।'

इस प्रकार राजा चोल और विष्णुदास दोनों ही होड़ लगाकर भगवान् श्रीविष्णुकी आराधना करने लगे। दोनों ही अपने-अपने व्रतमें स्थित रहते थे, दोनोंकी ही इन्द्रियाँ और कर्म भगवान्‌में ही केन्द्रित थे।

'एक दिनकी बात है, विष्णुदासने नित्यकर्म करनेके पश्चात् भोजन तैयार किया; किंतु उसे किसीने चुरा लिया। चुरानेवालेको किसीने नहीं देखा। विष्णुदासने भोजन चुरा लिये जानेपर भी दुबारा भोजन नहीं बनाया; क्योंकि ऐसा करनेपर सायंकालकी पूजाके लिये अवकाश नहीं मिलता, अतः प्रतिदिनके नियमके भङ्ग हो जानेका भय था। दूसरे दिन उसी समयपर भोजन बनाकर वे ज्यों ही भगवान् विष्णुको भोग लगानेके लिये गये, त्यों ही कोई आकर फिर सारा भोजन चुरा ले गया। इस प्रकार लगातार सात दिनोंतक कोई आ-आकर उनके भोजनका अपहरण करता रहा। इससे विष्णुदासको बड़ा विस्मय हुआ। वे विचार करने लगे—'अहो! यह कौन प्रतिदिन आकर मेरी रसोई चुरा ले जाता है? मैं क्षेत्र-संन्यास ले चुका हूँ, अब किसी तरह इस स्थानका परित्याग नहीं कर सकता। यदि दुबारा भोजन बनाता हूँ तो सायंकालकी पूजा छूट जाती है। जबतक सारी सामग्री भगवान् श्रीविष्णुके निवेदन न कर लूँ, तबतक मैं भोजन नहीं करता। प्रतिदिन उपवास करनेसे मैं इस व्रतकी समाप्तितक जीवित कैसे रह सकूँगा? अच्छा, आज मैं रसोईकी भलीभाँति रक्षा करूँगा।'

'यों सोचकर भोजन बनानेके पश्चात् विष्णुदास वहीं कहीं छिपकर खड़े हो गये। इतनेमें ही एक चाण्डाल दिखायी दिया, जो उनका अन्न चुराकर ले जानेको उद्यत था। भूखके मारे उसका सारा शरीर दुर्बल हो रहा था, मुखपर दीनता छा रही थी, शरीरमें हाड़ और चामके सिवा और कुछ बाकी नहीं बचा था। उसे देखकर श्रेष्ठ ब्राह्मण विष्णुदासका हृदय करुणासे व्यथित हो उठा। उन्होंने उससे कहा—'भैया! जरा ठहरो, ठहरो! क्यों रूखा-सूखा खाते हो? यह घी तो ले लो।' इस प्रकार बोलते हुए विप्रवर विष्णुदासको आते देख वह चाण्डाल बड़े वेगसे भागा और भयसे मूर्च्छित

होकर गिर पड़ा। विष्णुदास तुरंत उसके समीप पहुँच गये और करुणावश अपने वस्त्रसे उसे हवा करने लगे। तदनन्तर जब वह उठकर खड़ा हुआ, तब विष्णुदासने देखा—वह चाण्डाल नहीं, साक्षात् भगवान् नारायण ही शङ्ख, चक्र और गदा धारण किये सामने विराजमान हैं। उनकी कटिमें पीताम्बर है, चार भुजाएँ हैं, हृदयमें श्रीवत्सका चिह्न तथा मस्तकपर किरीट शोभा पा रहे हैं। अलसीके फूलकी भाँति श्यामसुन्दर शरीर और कौस्तुभ-मणिसे जगमगाते हुए वक्षःस्थलकी अपूर्व शोभा हो रही है। अपने प्रभुको प्रत्यक्ष सम्मुख देखकर द्विजश्रेष्ठ विष्णुदास रोमाञ्च, अश्रुपात आदि सात्त्विक भावोंसे इस प्रकार समन्वित हो गये कि वे भगवान्‌की स्तुति और नमस्कार करनेमें भी समर्थ न हो सके। उस समय वहाँ इन्द्र आदि देवता तथा ऋषि-महर्षि भी आ पहुँचे। भगवान् श्रीविष्णुने सात्त्विक व्रतका पालन करनेवाले अपने भक्त विष्णुदासको छातीसे लगा लिया और उन्हें अपने-ही-जैसा रूप देकर वे वैकुण्ठ-धामको ले चले।

उस समय यज्ञमें दीक्षित हुए राजा चोलने देखा, विष्णुदास एक सुन्दर विमानपर बैठकर भगवान् श्रीविष्णुके धाममें जा रहे हैं। राजाने तुरंत ही अपने गुरु महर्षि मुद्गलको बुलाकर कहा—'जिसके साथ होड़ लगानेके कारण मैंने यह यज्ञ-दान आदि कर्मका अनुष्ठान किया है, वह ब्राह्मण आज भगवान् श्रीविष्णुका रूप धारण करके मुझसे पहले ही वैकुण्ठधाममें जा रहा है। मैंने इस वैष्णवयागमें भलीभाँति दीक्षित होकर अग्निमें हवन किया और दान आदिके द्वारा ब्राह्मणोंका मनोरथ पूर्ण किया; तथापि अभीतक भगवान् मुझपर प्रसन्न नहीं हुए और इस ब्राह्मणको केवल भक्तिके ही कारण श्रीहरिने प्रत्यक्ष दर्शन दिया है। अतः जान पड़ता है, भगवान् विष्णु केवल दान और यज्ञोंसे प्रसन्न नहीं होते; उन प्रभुका दर्शन करानेमें भक्ति ही प्रधान कारण है।

राजा चोल बचपनसे ही यज्ञकी दीक्षा लेकर उसीमें संलग्न रहते थे, इसलिये उन्हें कोई पुत्र नहीं हुआ था; अतः उन्होंने अपने भानजेको

राजसिंहासनपर अभिषिक्त कर दिया। तत्पश्चात् वे यज्ञशालामें गये और यज्ञकुण्डके सामने खड़े होकर श्रीविष्णुको सम्बोधित करते हुए तीन बार उच्च स्वरसे निम्नाङ्कित वचन बोले—'भगवान् विष्णु! आप मुझे मन, वाणी, शरीर और क्रियाद्वारा निश्चल भक्ति दीजिये।' यों कहकर वे सबके देखते-देखते अग्निमें कूद पड़े। राजा ज्यों ही अग्निकुण्डमें कूदे, त्यों ही भक्तवत्सल भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हो गये और उन्होंने राजाको छातीसे लगाकर एक श्रेष्ठ विमानपर बिठाया। फिर उसे अपने ही समान रूप देकर उन देवेश्वरने देवताओंसहित वैकुण्ठ धामको प्रस्थान किया।'*

कथा सुनकर खोमचेवालेके चित्तमें बड़ी प्रसन्नता हुई और उसने उत्साहपूर्वक महात्माजीसे पूछा—'मुझ-जैसे अकिञ्चनको शीघ्र-से-शीघ्र भगवान् कैसे मिल सकते हैं! महात्माजी बोले—'तू सब प्राणियोंमें परमात्माको व्यापक देखकर अपने कर्मोंके द्वारा उनकी सेवा किया कर, जैसा कि गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने बतलाया है—

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः॥

(१८।४६)

'जिस परमेश्वरसे सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है और जिससे यह समस्त जगत् व्याप्त है, उस परमेश्वरकी अपने स्वाभाविक कर्मोंद्वारा पूजा करके मनुष्य परमसिद्धि (परमात्मा) को प्राप्त हो जाता है।'

महात्माजीका आदेश पाकर खोमचेवाला अपने गाँवको लौट गया और उनके आज्ञानुसार साधन करने लगा। वह खोमचेसे नित्य दो रुपये कमाता था, जिनमेंसे डेढ़ रुपयेमें तो अपना और अपने कुटुम्बका भरण-पोषण कर लेता, शेष आठ आने बचते, उनको दुःखी, अनाथ, असहाय, आतुर और भूखे प्राणियोंकी सेवामें लगा देता था।

---

* यह कथा पद्मपुराणके उत्तरखण्डमें ११०-१११ वें अध्यायोंमें वर्णित है।

इस प्रकार सेवा करते उसे तीन वर्ष बीत गये, पर भगवत्प्राप्तिका कोई भी चिह्न न देखकर वह एक दिन पुनः महात्माजीके पास आकर कहने लगा—'महाराजजी ! मैं नित्य दो रुपये कमाता हूँ, डेढ़में अपना भरण-पोषण करके आठ आने दुःखियोंकी सेवामें लगाता हूँ, परंतु अभीतक भगवान्‌की प्राप्तिका कोई पूर्व लक्षण भी मुझमें नहीं दीखता। आप ही बतलाइये, मैं क्या करूँ जिससे शीघ्र-से-शीघ्र भगवान्‌की प्राप्ति हो।' महात्माजी बोले—'तू जो करता है सो ठीक ही करता है, और भी उत्साह तथा उल्लासके साथ एवं विश्वासपूर्वक गरीब, दीन, दुःखी, आतुर, दरिद्ररूप नारायणकी सेवा विशेषरूपसे करता रह।' इसपर खोमचेवाला 'बहुत अच्छा' कह अपने घर लौट गया और महात्माजीके आज्ञानुसार पुनः विशेष उत्साहपूर्वक दुःखियोंकी सेवा करने लगा।

उसी शहरमें झोंपड़ी बाँधकर एक लकड़ी बेचनेवाला रहता था; वह जंगलसे सूखी लकड़ी लाकर उसे बेचकर बड़ी कठिनतासे अपनी उदरपूर्ति करता था। एक दिनकी बात है कि जंगलमें उसे समीपमें लकड़ियाँ नहीं प्राप्त हुईं तो वह कुछ दूर चला गया, जिससे उसे लौटनेमें विलम्ब हो गया। जब वह लकड़ियाँ लेकर वापस आया तब दिनके बारह बज गये और ग्रीष्मकालकी कड़ी धूपके कारण वह पसीनेसे तर हो गया। वह अभी शहरसे एक मील दूरपर था, तब उसका जी मिचलाने लगा और वह चक्कर खाकर जमीनपर गिर पड़ा। लकड़ियोंका गट्ठर उसके सिरसे एक किनारे गिर गया और वह बेहोश हो गया।

इसी समय वह खोमचेवाला अपने गाँवसे खोमचा लेकर शहरकी ओर चला; रास्तेमें लकड़हारेको मूर्च्छित पड़ा देखकर उसके हृदयमें दया आ गयी। खोमचेवालेके पास उबले हुए चने और जल पर्याप्त था ही, उसने तुरंत एक चुल्लू जल लेकर उसके मुखपर छिड़का, कुछ जल उसके मुखमें डाल दिया और कपड़ेके पल्लेसे उसे हवा करने लगा, जिससे लकड़हारेको कुछ होश हुआ और उसने आँखें खोलीं। जब वह होशमें आकर बैठा, तब

खोमचेवालेने उसको पेड़की छायामें ले जाकर और उसे नितान्त गरीब, दुःखी और भूखा समझकर खानेके लिये उबले हुए यथेष्ट चने दे दिये और जल पिला दिया। इससे उसकी आत्मा बड़ी ही तृप्त हुई और उसने अपनी सारी दुःख-कहानी खोमचेवालेको कह सुनायी। तदनन्तर वह उस खोमचेवालेका आभारी होकर विनययुक्त वचनोंसे उसकी स्तुति करने लगा। इसपर खोमचेवालेने कहा—'भैया ! स्तुति करनेयोग्य तो भगवान् हैं। यह जो कुछ है, भगवान्का ही है; मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ। स्तुति तो तुझे भगवान्की ही करनी चाहिये। और मेरे लायक जो सेवा-चाकरी हो सो बतला, मैं तेरी सेवामें उपस्थित हूँ।' लकड़हारेने कहा—'अब मैं सबल हो गया हूँ, मुझे कोई तकलीफ नहीं है, यह लकड़ीका बोझा मेरे सिरपर उठा दो, जिससे मैं शहरको चला जाऊँ।' खोमचेवालेने उसका गट्ठर सिरपर उठा दिया और वह शहरकी ओर चल पड़ा।

इसके पश्चात् ज्यों ही खोमचेवाला अपना खोमचा और जलपात्र लेकर शहरकी ओर चलनेको उद्यत हुआ कि भगवान् प्रकट हो गये। भगवान्के दर्शन करके उसके रोमाञ्च और अश्रुपात होने लगे, उस समय उसके आनन्द और शान्तिका पारावार नहीं रहा। तब भगवान्ने उससे कहा—'गरीब-दुःखीके रूपमें की हुई तेरी सेवासे मैं संतुष्ट हूँ, अब जो इच्छा हो सो वरदान माँग।' खोमचेवाला बोला—'प्रभो ! आज आपने अपना दर्शन देकर मुझे कृतार्थ कर दिया, अब इससे बढ़कर और है ही क्या; जिसे मैं माँगू।' भगवान्के बारंबार आग्रह करनेपर उसने पुनः कहा—'आपमें मेरा अनन्य विशुद्ध प्रेम सदा बना रहे।' इसपर भगवान् 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गये।

खोमचेवाला भगवान्के प्रेमानन्दमें निमग्न होकर महात्माजीके पास आया और उनके चरणोंमें साष्टाङ्ग प्रणिपात करनेके बाद अपनी सारी घटना उनसे आद्यन्त कह सुनायी। महात्माजी बोले—'इस दरिद्र, दुःखी, गरीब लकड़हारेको जो तूने चने खिलाकर जल पिलाया—तेरा यह सेवाकार्य बहुत

ही श्रेष्ठ हुआ। पहले तेरे जितने सेवाकार्य हुए, उनमें यह सबसे बढ़कर है।' खोमचेवाला महात्माजीकी वाणी सुनकर आनन्दमग्न हो गया और उनको नमस्कार करके अपने घर लौट गया।

इस कहानीसे हमलोगोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि दुःखी-अनाथ प्राणियोंकी सेवा करते-करते भगवान्‌की प्राप्तिमें विलम्ब हो तो उकतावें नहीं, वरं सबमें भगवद्‌बुद्धि करके निष्कामभावसे परम श्रद्धा, विश्वास, विनय और प्रेमपूर्वक तत्परताके साथ सेवा करते ही रहें।' सेवामें श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवद्भाव और निष्कामभाव होनेसे वह उच्च कोटिकी साधना हो जाती है। अतः यह साधन करते हुए इन भावोंकी उत्तरोत्तर वृद्धि होती रहनी चाहिये। उपर्युक्त दोनों भाव (भगवद्भाव और निष्कामभाव) साथ रहें तब तो बात ही क्या, इनमेंसे केवल एक भाव भी रहे तो भी भगवत्प्राप्ति हो सकती है। अतएव हमलोगोंको समस्त प्राणियोंमें उस परब्रह्म परमात्माको व्याप्त समझकर सबकी सेवा और परोपकार करनेमें तत्पर होकर लग जाना चाहिये।

राजा चक्कवेणके त्यागका प्रभाव

राजा चक्कवेणकी कहानी कहीं किसी पुस्तकमें तो मैंने नहीं देखी है; परम्परासे लोकविख्यात है। यह चक्कवेणका इतिहास वास्तविक है या काल्पनिक, मुझको पता नहीं। जो भी कुछ हो, हमें तो इससे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। वह कहानी इस प्रकार है—

एक समय चक्कवेण नामके एक राजा हुए थे। वे बड़े ही सद्गुण-सदाचारसम्पन्न, धर्मात्मा, सत्यवादी, स्वावलम्बी, अध्यवसायशील, त्यागी, विरक्त, ज्ञानी, भक्त, तेजस्वी, तपस्वी और उच्च कोटिके अनुभवी महापुरुष थे। वे राज्यके द्रव्यको दूषित समझकर उसे स्वयं अपने और अपनी पत्नीके काममें नहीं लाते थे। प्रजासे जो कुछ 'कर' लिया जाता था, वह सारा-का-सारा प्रजाकी ही सेवामें लगा दिया जाता था। राज्यका कार्य वे निरभिमानपूर्वक निष्कामभावसे तन-मनसे किया करते थे। प्रजापर उनका बड़ा प्रभाव था। रामराज्यकी भाँति उनके राज्यमें कोई दुःखी नहीं था, सभी सब प्रकारसे सुखी थे।

वे अपने शरीरनिर्वाहके लिये पृथक् खेती किया करते थे। स्वयं रानी बैलके स्थानमें हल खींचा करती और वे बीज बोया करते। वे अपने ही खेतमें उपजे हुए अन्नसे अपना भरण-पोषण करते थे। वे गन्ना, रूई, अनाज, फल और शाककी खेती किया करते थे। अपने खेतमें उपजी हुई रूईका ही वस्त्र बनाकर पहनते, अपने खेतमें उपजे हुए गन्नोंका ही गुड़ बनाकर खाते और अपने खेतमें उपजे हुए अन्न, फल, शाकको ही भोजनके काममें लाते थे। उनकी पत्नीके पास कोई भी आभूषण नहीं थे; क्योंकि वे राज्यके द्रव्यसे तो आभूषण बनवाते नहीं और अपनी की हुई खेतीकी उपजसे केवल सादगीसे खाने-पहननेका कामभर चलता था। खेतीके सिवा उन्हें राज्यके कार्योंमें भी तो समय देना पड़ता था। उनका जीवन एक सीधे-सादे

सदाचारी किसानके-जैसा था। छः घंटे शयनके सिवा उनका सारा समय ईश्वरभक्ति, परोपकार, राज्य-कार्य और कृषिके कार्योंमें ही बीतता था। उनका सब जीवोंके प्रति समता, दया और प्रेमका भाव समान था। वे सब प्राणियोंको परमात्माका स्वरूप मानकर सबकी निष्काम प्रेमभावसे सेवा करते थे। वे स्वावलम्बी थे; अपने शरीरका काम स्वयं ही करते थे। किसी राज्यकर्मचारी या नौकर आदिसे नहीं कराते थे। वे जो कुछ भी कार्य करते, आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर बड़े ही उत्साह और धैर्यसे किया करते।

एक दिनकी बात है। जिस देशमें राजा चक्रवेण रहते थे, वहाँ एक बड़ा भारी मेला लगा। उसमें नगरके अन्यान्य प्रान्तोंके लोग बड़ी भारी संख्यामें इकट्ठे हुए। राजा-रानीके दर्शनके लिये यों तो बराबर ही लोग आते रहते, पर मेलेके कारण नर-नारियोंकी भीड़ कुछ अधिक रहती थी। राजाके पास अधिकतर पुरुष आते और रानीके पास अधिकतर स्त्रियाँ आया करती थीं। एक दिन बहुत-से गहनों और रेशमी वस्त्रोंसे सजी-धजी अनेक दासियोंसे घिरी हुई बहुत-सी धनी व्यापारियोंकी स्त्रियाँ रानीका दर्शन करनेके लिये उनके पास आयीं। उन स्त्रियोंने कहा—'रानीजी! आपके-जैसे वस्त्र तो हमारी मजदूरिनियाँ भी नहीं पहनतीं; आप हमारी दासियोंको देखिये, कैसे वस्त्राभूषण पहने हैं। आपके वस्त्राभूषण तो हमलोगोंसे भी बढ़कर होने चाहिये। जैसे ये हमारी दासियाँ हैं, उसी प्रकार हमलोग तो आपकी दासीके समान हैं। आपके स्वामी बड़े सम्राट् हैं, आप उनसे थोड़ा-सा भी संकेत कर देंगी तो वे आपके लिये हमलोगोंसे बढ़कर वस्त्राभूषणकी व्यवस्था कर देंगे। आप हमारी स्वामिनी हैं, इसलिये हमें आपको इस वेशमें देखकर दुःख होता है। ऐसे वस्त्र तो भीख माँगनेवाली भिखारिन भी पहनना नहीं चाहती। एक सम्राट्की महारानीके-जैसे वस्त्राभूषण होने चाहिये हम उसी रूपमें आपको देखना चाहती हैं।' इस प्रकार कहकर वे अपना प्रभाव डालकर चली गयीं। रानीके चित्तपर उनकी बातोंका बड़ा असर पड़ा।

रात्रिमें जब महाराज आये, तब रानीने सब घटना उनको सुनायी और

दिनमें जो कुछ धनी व्यापारियोंकी स्त्रियोंने कहा था, सब राजासे निवेदन किया एवं उनसे अनुरोध किया कि मेरे पहननेके लिये बहुमूल्य वस्त्र और आभूषण मँगा दीजिये। राजाने उत्तर दिया—'कैसे मँगा दूँ? व्यवहारमें लाना तो दूर रहा, मैं राज्यके पैसोंको छूता भी नहीं, उससे बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है।' रानी भी बहुत उच्च कोटिकी पवित्र स्त्री थीं, किन्तु वस्त्राभूषणोंसे सजी-धजी धनिकोंकी स्त्रियोंका उनपर काफी असर पड़ चुका था, अतः रानीने कहा—'चाहे जैसे भी हो, आप सम्राट् हैं और मैं आपकी पटरानी हूँ। मेरे लिये तो एक सम्राट्की पटरानीके योग्य बहुमूल्य वस्त्राभूषण मँगानेकी कृपा आपको करनी ही होगी।' पत्नीकी प्रीतिसे प्रेरित राजाने सोचा—'रानी कितना भी आग्रह क्यों न करें, मैं राज्यके द्रव्यको तो किसी भी हालतमें उपयोगमें ला नहीं सकता, किंतु मैं सम्राट् हूँ; दुष्ट, अत्याचारी और बलवान् राजाओंसे 'कर' ले सकता हूँ।' यह सोचकर उन्होंने पर-राष्ट्रों तथा अधीनस्थ राज्योंके कार्यका सम्पादन करनेवाले मन्त्रीको बुलाया और कहा—'मन्त्री! आप राक्षसराज रावणके पास जाइये और कहिये कि राजा चक्रवेणकी ओरसे मैं आया हूँ, उन्होंने मुझे आपसे 'कर' के रूपमें सवा मन सोना प्राप्त करनेके लिये आपके पास भेजा है।'

सम्राट्की आज्ञासे मन्त्री कुछ आदमियोंको ले रथमें बैठकर समुद्रके किनारे पहुँचे और फिर जलयानके द्वारा समुद्रके उस पार पहुँचकर लङ्कामें प्रवेश किया तथा राजसभामें जाकर बड़ी नम्रता और सभ्यताके साथ सम्राट् चक्रवेणका संदेश सुनाया। संदेशको सुनते ही रावण हँसा और उसने सभासदोंसे कहा—'देखो, ऐसे मूर्ख राजा भी संसारमें अभी हैं, जो ऋषि, देवता, राक्षस आदि सभीसे 'कर' लेनेवाले मुझ-जैसे बलवान् सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र महान् सम्राट्से भी करकी आशा रखते हैं!' उन्होंने राजा चक्रवेणके दूतको कैद करना चाहा, किन्तु सभासदोंके अनुरोध करनेपर उसे छोड़ दिया। वह रावणकी सभासे उठकर समुद्रके किनारे लौट आया।

तदनन्तर रावण जब रात्रिमें मन्दोदरीके पास महलमें गया, तब रावणने

हँसकर मन्दोदरीसे विनोद करते हुए कहा—भारतवर्षमें चक्कवेण नामका 'कोई एक राजा है। आज उसका एक दूत सभामें आया था और उसने मुझसे सवा मन स्वर्ण 'कर' के रूपमें देनेको कहा। मुझे इसपर बड़ी हँसी आयी। देखो, संसारमें ऐसे मूर्ख भी अभीतक जीते हैं जो मुझ-जैसे सबसे कर लेनेवालेसे भी कर लेनेकी आशा रखते हैं! मैं तो उसके दूतको कैद करना चाहता था, पर सभासदोंके अनुरोधसे उसे छोड़ दिया।' मन्दोदरीने दुःख प्रकट करते हुए कहा—'स्वामिन्! आपने बहुत बुरा किया। चक्कवेणको मैं जानती हूँ, वे सत्यवादी और धर्मात्मा राजा हैं। उनका चक्र चलता है। जो उनकी आज्ञाका पालन नहीं करता, उसका अनिष्ट हो जाता है। उस दूतको संतोष कराकर ही आपको उसे भेजना चाहिये था। उसका पता लगाकर अब भी उसको संतोष करा दें, नहीं तो पता नहीं, हमारा कितना अनिष्ट हो जायगा।' रावण बोला—'तू बड़ी डरपोक है, मामूली मनुष्य-राजाओंसे तू इतना भय करती है, मैं इसकी कुछ भी परवा नहीं करता।' रानीने कहा—'कल प्रातःकाल मैं आपको चक्कवेणका प्रभाव दिखलाऊँगी।' प्रातः होते ही राजाके साथ मन्दोदरी महलके छतपर गयी, जहाँ वह रोज कबूतरोंको अनाज डाला करती थी। अनाज चुगने वहाँ बहुत-से कबूतर आया करते। मन्दोदरीने दाने चुगते हुए पक्षियोंसे कहा—'राजा रावणकी दुहाई है, खबरदार! दाने न चुगना।' किंतु वे चुगते ही रहे। फिर रानीने राजासे कहा—'देखिये, आपके सम्मुख और आपकी दुहाई देनेपर भी ये सब दाने चुगते ही रहे।' रावणने कहा—'मूर्खे! ये पक्षी बेचारे क्या समझें!' मन्दोदरी बोली—'अब आप राजा चक्कवेणके प्रभावको देखिये।' फिर उसने पक्षियोंसे कहा—'सावधान! चक्कवेणकी दुहाई है, कोई दाने न चुगना।' इतना सुनते ही सब पक्षियोंने एक साथ दाने चुगने बंद कर दिये। उनमेंसे एक कबूतर बहिरा था, वह कुछ भी सुन नहीं पाता था; अतः उसने दाना उठा लिया। ज्यों ही उसने दाना उठाया, त्यों ही उसकी गर्दन टूटकर गिर गयी। रानीने रावणसे कहा—'देखिये, राजा चक्कवेणकी दुहाईपर सबने

दाने चुगने बंद कर दिये, एक बहिरे कबूतरने न सुननेके कारण दाना उठा लिया, जिससे चक्रवेणके चक्रसे उसका मस्तक कटकर गिर गया।' फिर रानी पक्षियोंसे बोली—'अब मैं चक्रवेणकी दुहाई हटा लेती हूँ, अब दाने चुगो।' तुरन्त सब पक्षी दाने चुगने लगे। रानीने फिर कहा—'जो तुम्हारे सम्मुख खड़े हैं, उन राजा रावणकी दुहाई है, कोई भी दाने न चुगना।' किंतु राजा रावणके सामने रहते हुए भी किसीने परवा न की और वे दाने चुगते ही रहे। मन्दोदरीने रावणसे कहा—'देखिये, आपका इन पक्षियोंपर कुछ भी असर नहीं होता, परन्तु राजा चक्रवेणके प्रभावपर विचार कीजिये, उनके सामने न रहते हुए भी उनका कितना असर है।' रावणने कहा—'मालूम होता है तुम्हारी इसमें कोई माया है। नहीं तो, ये पक्षी बेचारे क्या समझें।' ऐसा कहकर रावण टालमटोल करके राजसभामें चला गया।

इधर, राजा चक्रवेणके मन्त्रीने समुद्रके किनारे एक नकली लङ्काकी रचना की। उसने कज्जलके समान अत्यन्त महीन मिट्टीको समुद्रके जलमें घोलकर खड़ीकी तरह बना लिया तथा तटकी जगहको चौरस बनाकर उसपर उस मिट्टीसे एक छोटे आकारमें नकली लङ्का की रचना की। धुली हुई मिट्टीकी बूँदोंको टपका-टपकाकर उसीसे लङ्काके परकोटे, बुर्ज और दरवाजों आदिकी रचना की। परकोटेके चारों ओर कँगूरे भी काटे गये एवं उस परकोटेके भीतर लङ्काकी राजधानी और नगरके प्रसिद्ध बड़े-बड़े मकानोंको भी छोटे आकारमें रचना करके दिखाया गया। इन सबकी रचना करनेके बाद वह पुनः रावणकी सभामें गया। उसे देखकर रावण चौंक उठा और उससे बोला—'क्यों जी! तुम फिर यहाँ किसलिये आये हो?' उसने कहा—'मैं आपको एक कौतूहल दिखलाना चाहता हूँ। आप मेरे साथ समुद्रतटपर चलिये।' रावण कौतूहल देखनेको उत्सुक हो गया और कुछ सभासदोंको साथ लेकर समुद्रतटपर गया, जहाँ उस मन्त्रीने छोटे आकारमें नकली लङ्काकी रचना की थी।

उसने रावणसे पूछा—'देखिये, यह ठीक-ठीक आपकी लङ्काकी

नकल है न ?' रावणने उसकी अद्भुत कारीगरी देखी और कहा—'ठीक है; क्या यही दिखानेके लिये मुझे यहाँ लाये थे ?' मन्त्री बोला—'नहीं-नहीं, इस लङ्कासे आपको मैं एक कौतूहल दिखाता हूँ; देखिये, लङ्काके पूर्वका परकोटा, दरवाजा, बुर्ज और कँगूरे साफ-साफ ज्यों-के-त्यों दीख रहे हैं न ? रावणने कहा—'दीख रहे हैं।' मन्त्रीने कहा—'मेरी रची हुई लङ्काके पूर्वद्वारके कँगूरोंको मैं राजा चक्कवेणकी दुहाई देकर गिराता हूँ, इसके साथ ही आप अपनी लङ्काके पूर्वद्वारके कँगूरे गिरते हुए देखेंगे।' इतना कहकर मन्त्रीने 'राजा चक्कवेणकी दुहाई है' कहकर अपनी रची लङ्काके पूर्वद्वारके कँगूरे गिरा दिये। उनके गिरनेके साथ-साथ ही रावणको असली लङ्काके पूर्वद्वारके कँगूरे गिरते हुए दिखायी दिये। यह देखकर रावणको बड़ा आश्चर्य हुआ। इसके बाद दूतने कहा—'अब मैं अपनी रची हुई लङ्काके पूर्वके परकोटेके द्वारके आस-पासकी चारों बुर्जें मिटाता हूँ, इसके साथ-साथ ही आप अपनी असली लङ्काकी बुर्जोंको भी मिटती हुई देखेंगे।' यह कहकर उसने चक्कवेणकी दुहाई देकर अपनी बनायी मिट्टीकी लङ्काकी बुर्जें मिटा दीं, उसके साथ ही रावणकी असली लङ्काके पूर्वद्वारकी बुर्जें भी चकनाचूर होकर नष्ट हो गयीं। यह देखकर रावणको बहुत ही आश्चर्य हुआ और उसे मन्दोदरीकी कही हुई बात याद आ गयी।

तदनन्तर राजा चक्कवेणके मन्त्रीने कहा—'राजन्! आप यदि सवा मन सोना 'कर' के रूपमें नहीं देंगे तो भी राजा चक्कवेणको आपसे युद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। राजा चक्कवेणके प्रभावका चक्र चलता है। मैं अकेले ही आपकी लङ्काको नष्ट-भ्रष्ट करनेके लिये काफी हूँ। अभी राजा चक्कवेणकी दुहाई देकर आपकी लङ्काको क्षणमात्रमें एक हाथके झटकेसे नष्ट किये देता हूँ। आप उस लङ्काकी रक्षा कर सकें तो करें। यदि आपको लङ्काकी रक्षा करनी है तो 'कर' के रूपमें सवा मन सोना दे दीजिये; इसके सिवा और कोई उपाय नहीं है।' रावणने सोचा—'मेरे देखते-देखते क्षणमात्रमें पूर्वद्वारके कँगूरे और चारों बुर्जें गिर गयीं, जो धातुनिर्मित और

बहुत ही मजबूत थीं। इसी प्रकार इस सारी लङ्काको नष्ट करना इसके बायें हाथका खेल है।' यह सोचकर रावणने सवा मन सोना 'कर' के रूपमें देना स्वीकार कर लिया और मन्त्रीसे कहा—'चलिये, मैं आपको सवा मन सोना दे देता हूँ।' तत्पश्चात् उन्हें सवा मन सोना देकर विदा किया।

मन्त्री सवा मन सोना लेकर राजा चक्रवेणके पास वापस लौट आया। उसने राजा-रानीके पास जाकर उनके सामने सवा मन सोना रख दिया और कहा—'आपकी आज्ञासे रावणसे 'कर' के रूपमें सवा मन सोना ले आया हूँ।' राजाके यह पूछनेपर कि 'तुमने यह सोना कैसे प्राप्त किया ?' उसने आद्योपान्त सारी घटना उनको कह सुनायी।

यह घटना सुनकर रानीको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसपर इसका बड़ा प्रभाव पड़ा। उसने राजासे पूछा—'यह क्या बात है ?' राजाने कहा—'हमलोग स्वावलम्बी होकर परिश्रमपूर्वक खेती करके अपना निर्वाह करते हुए वैराग्य और त्यागपूर्वक अपना जीवन बिताते हैं और निष्कामभावसे प्रजाके धनको प्रजाकी सेवामें ही लगा देते हैं, अपने व्यक्तिगत कार्यके लिये राज्यके पैसेको छूतेतक भी नहीं, इसीका यह प्रभाव है।'

यह सुनकर रानीका दिल बदल गया। रानी बोली—'स्वामिन्! मैं बहुमूल्य वस्त्राभूषण नहीं पहनूँगी। जिस प्रकार अबतक नियमसे रहती आयी हूँ, वैसे ही रहूँगी, कुछ भी परिवर्तन नहीं करूँगी। धनी व्यवसायियोंकी स्त्रियोंके कुसंगसे मेरी बुद्धि त्याग-वैराग्य और धर्मसे विचलित हो गयी थी, किंतु अब उनके संगका मुझपर कोई असर नहीं रह गया है। मैंने आपसे जो कुछ दुराग्रह किया, उसके लिये मैं क्षमा-प्रार्थना करती हूँ। मेरे अपराधको आप क्षमा करें और इस स्वर्णको वापस लौटा दें।'

राजाने उसकी बात मानकर मन्त्रीसे कहा कि 'मन्त्री! इसपर जो कुसंगका असर पड़ा था, वह ईश्वरकी कृपासे दूर हो गया है। अब इस धनको जहाँसे तुम लाये थे, वहीं वापस कर दो।' राजाकी आज्ञा होते ही मन्त्री वह स्वर्ण लेकर लङ्कापति रावणके पास पुनः गया और सभामें जाकर

बोला—'महाराज चक्रवेणने आपका यह स्वर्ण वापस लौटा दिया है। उनकी पत्नीकी जो बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहननेकी अभिलाषा हो गयी थी, वह भगवत्कृपासे अब नहीं रही। अतः अब इसकी उन्हें आवश्यकता नहीं है।'

इस बातको सुनकर रावणके हृदयपर चक्रवेणके त्यागका और भी अधिक असर पड़ा। उसने वह स्वर्ण रखकर मन्त्रीको बहुत ही आदर-सत्कारपूर्वक विदा किया। मन्त्रीने वापस आकर राजा-रानीको स्वर्ण लौटा देनेका सब हाल सुना दिया। दूतकी बात सुनकर राजा-रानीको बहुत ही प्रसन्नता हुई। राजा चक्रवेणका प्रभाव यक्ष, राक्षस, देवता, मनुष्य, ऋषि, मुनि, पशु, पक्षी आदि सभीपर था।

इस कहानीसे हमलोगोंको यह शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये—प्रत्येक स्त्री-पुरुषको निष्कामभावसे अपने-अपने वर्णाश्रम-धर्मके अनुसार न्याय और सत्यतापूर्वक अपनी जीविका चलानी चाहिये। दूसरोंके आश्रित होकर अपना जीवन-निर्वाह करना भी अपने लिये घृणास्पद है। झूठ, कपट, बेईमानी करके उपार्जित द्रव्यसे हमें यदि मेवा-मिष्ठान्न भी मिल जायँ तो वे हमारे लिये विषके समान हैं, किंतु अपने न्यायोपार्जित पवित्र द्रव्यसे एक मुट्ठी चने भी खानेको मिलें तो वे हमारे लिये अमृतके समान हैं। हमें बीमारी और आपत्तिकालके अतिरिक्त—नौकर-चाकर, स्त्री-पुत्र और शिष्य आदिके रहते हुए भी अपने शरीरका काम जहाँतक हो सके, स्वयं ही करनेका अभ्यास डालना चाहिये, जिससे कि हमें दूसरोंके अधीन होकर जीना न पड़े। कल्याणकामी पुरुषोंके लिये दूसरोंके आश्रित होकर जीना लज्जास्पद है।

साथ ही हमें समयको अमूल्य समझकर एक क्षण भी व्यर्थ नहीं बिताना चाहिये। हर समय भगवान्‌को याद रखते हुए परोपकार और शरीर-निर्वाह आदिका कार्य करते रहना चाहिये। छः घंटे सोनेके अतिरिक्त एक क्षण भी न तो समय व्यर्थ बिताना चाहिये और न उसका दुरुपयोग करना चाहिये। मनुष्यका जीवन बड़ा ही मूल्यवान् है। अतः क्षणमात्र भी निकम्मा

नहीं रहना चाहिये, अपनी बुद्धिसे हम जिसको सबसे बढ़कर कार्य समझें, उसी कार्यको करते रहना चाहिये।

थोड़ी देरका कुसंग भी मनुष्यके लिये बहुत हानिकारक हो जाता है—इस बातको ध्यानमें रखकर नास्तिक, नीच, प्रमादी, भोगी, पापी, निकम्मे, आलसी, दूसरोंपर निर्भर रहकर जीवन-निर्वाह करनेवाले, बहुमूल्य वस्त्राभूषण धारण करनेवाले, खेल-तमाशा और मादक वस्तुओंका सेवन करनेवाले, दुर्व्यसनी स्त्री या पुरुषोंका कभी भूलकर क्षणमात्र भी संग नहीं करना चाहिये और प्रमाद, आलस्य, निद्रा, भय, उद्वेग, राग, द्वेष, अहंकार और दुर्व्यसन आदिसे रहित होकर अपना जीवन विवेक, वैराग्य, त्याग और संयमपूर्वक निष्कामभावसे भजन-ध्यान, सत्संग-स्वाध्यायमें ही बिताना चाहिये तथा सम्पूर्ण प्राणिमात्रको परमात्माका स्वरूप समझकर, आसक्ति और अहंकारसे रहित होकर निष्कामभावपूर्वक तन-मनसे सबकी सेवा करनी चाहिये एवं सबपर समान भावसे हेतुरहित दया और प्रेम रखना चाहिये।

—★—

जीवनकी सफलताके लिये अनुपम शिक्षा

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

(गीता १३।८)

इस श्लोकके भावको हृदयङ्गम करानेके लिये नीचे एक कहानीकी कल्पना की जाती है।—

अवन्तिकापुरीका राजा विश्वक्सेन बड़ा ही धर्मात्मा था। उसका राज्य धन-धान्यसे परिपूर्ण था। प्रजा उसकी आज्ञामें थी। उसके यहाँ किसी भी पदार्थकी कमी नहीं थी, किंतु उसके कोई संतान नहीं थी। वह एक बड़े सद्गुणसम्पन्न, सदाचारी और विरक्त महात्मा पुरुषके पास जाया करता था और उन महात्माकी सेवा-शुश्रूषा किया करता था।

एक दिन महात्माने पूछा—तुम बहुत दिनोंसे हमारे पास आते हो, तुम्हारे आनेका उद्देश्य क्या है ?

विष्वक्सेनने कहा—मेरे यहाँ किसी भी चीजकी कमी नहीं है। आपकी कृपासे मेरा राज्य धन-धान्यसे पूर्ण है, पर मेरे कोई पुत्र नहीं है, यही एक अभाव है। आप कृपापूर्वक ऐसा उपाय बतलाइये, जिससे मुझे एक बहुत उत्तम पुत्रकी प्राप्ति हो।

महात्माने कहा—तुम पुत्र-प्राप्तिके लिये विष्णुयाग करो। भगवान् उचित समझेंगे तो तुम्हें पुत्र दे सकते हैं।

राजा विष्वक्सेनने महात्माके कथनानुसार यथाशास्त्र विष्णुयागका अनुष्ठान किया। उस यज्ञशेष भोजनके फलस्वरूप उसकी स्त्रीके गर्भ रह गया और दस महीनेके पश्चात् उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह बालक बहुत ही सुन्दर और बुद्धिमान् था, मानो कोई योगभ्रष्ट हो। उसके पैदा होनेपर राजाने शास्त्रोक्त विधिके अनुसार उसके जातकर्मादि संस्कार कराये और उसका नाम रखा 'जनार्दन।' कुछ बड़े होनेपर जनार्दनको घरपर ही अध्यापक बुलाकर विद्याभ्यास कराया गया। कुशाग्रबुद्धि होनेके कारण जनार्दन शीघ्र ही विद्यामें पारङ्गत हो गया। वह संस्कृत आदि भाषाओंका एक अच्छा विद्वान् हो गया। वह सब लड़कोंके साथ बड़ा प्रेम करता। किसीके साथ भी कभी लड़ाई-झगड़ा और गाली-गलौज नहीं करता। वह स्वाभाविक ही सीधे सरल स्वभावका सद्गुणसदाचारसम्पन्न और मेधावी था।

एक दिन राजा विष्वक्सेन महात्माजीके पास गया तो अपने पुत्रको भी साथ ले गया। राजाने महात्माके चरणोंमें अभिवादन किया, यह देखकर लड़केने भी वैसे ही प्रणाम किया।

राजाने कहा—महात्माजी ! आपने जो अनुष्ठान बतलाया था, उसके फलस्वरूप आपकी कृपासे ही मेरे यह बालक पैदा हुआ है। अतः इसको कुछ शिक्षा देनेकी कृपा करें।

महात्मा बोले—

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

'इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण भोगोंमें आसक्तिका अभाव और अहंकारका भी अभाव, जन्म, मृत्यु, जरा और रोग आदिमें दुःख और दोषोंका बार-बार विचार करना।'

फिर महात्माजीने उस लड़केके हाव-भावको देखकर कहा कि 'यह लड़का योगभ्रष्ट पुरुष प्रतीत होता है। अतः यह आगे चलकर बहुत उच्च कोटिका विरक्त महापुरुष बन सकता है।'

यह सुनकर राजा अपने घरपर चला आया और अपनी पत्नी, मन्त्रिगण तथा सेवकोंको एकान्तमें बुलाकर सारी बातें उन्हें बतलायीं एवं समझा दिया कि इस लड़केको सदा-सर्वदा ऐशो-आराम और स्वाद-शौकीनीके ही वातावरणमें रखना चाहिये। भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी बातोंसे इसे सर्वदा दूर रखना चाहिये। इस बातका पूरा ध्यान रखा जाना चाहिये कि जिससे कोई भी वस्तु इसके भक्ति-विवेक-वैराग्यका कारण न हो जाय।

आज्ञानुसार सारी व्यवस्था हो गयी, किंतु जनार्दनके अन्तःकरणमें जो पूर्वजन्मके प्रबल संस्कार भरे थे, वे कैसे रुक सकते थे? इसके सिवा उसके हृदयपर महात्माजीकी शिक्षाका भी पर्याप्त प्रभाव पड़ चुका था। जनार्दन अपने समान आयुवाले लड़कोंके साथ खेलता था; किंतु उसका मन खेल-तमाशों और भोग-आराममें कभी लगता नहीं था। वह जब कभी पर्यटनके लिये बाहर जाता, तब राजाके सिखाये-समझाये हुए बुद्धिमान् मन्त्री विद्यासागर सदा उसके साथ रहते थे।

जब जनार्दनकी १८ वर्षकी आयु हो गयी, तब उसका विवाह कर दिया गया और वह अपनी पत्नीके साथ रहने लगा। कुछ दिनों बाद उसकी स्त्री गर्भवती हुई। जब संतान होनेका समय आया, तब दिनमें स्त्रीको बड़ा कष्ट हुआ। उसी रातमें लड़का पैदा हुआ; उस समय जनार्दन अपनी स्त्रीके पास ही था। प्रसव-कष्टको देखकर वह बहुत ही घबराया। जेर और मैलेके

साथ बच्चेका पैदा होना देखकर उसे बड़ी ही ग्लानि हुई और उसीके साथ सहज ही वैराग्यका भाव भी हुआ।

सबेरा होनेपर मन्त्री आ गये। सब घरवाले एकत्र हुए। रात्रिमें जनार्दनकी पत्नीकी प्रसव-वेदनाका हाल सुनकर सबको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने वैद्योंको बुलाकर दिखलाया। वैद्योंने कहा—'कष्ट तो लड़केको काफी हुआ, पर कोई चिन्ताकी बात नहीं है।'

तब जनार्दनने मन्त्री विद्यासागरसे पूछा—मन्त्री ! पैदा होते ही लड़का बहुत ही चिल्लाया और तड़फड़ाया। ऐसा क्यों हुआ ?

विद्यासागर बोले—जब बच्चा गर्भमें रहता है, तब सब द्वार बंद रहते हैं और जब वह बाहर निकलता है, तब एक बार उसे बहुत कष्ट होता है।

जनार्दन—यह जेर और मैला क्यों रहता है ?

विद्यासागर—यह सब गर्भमें इसके साथ रहते हैं।

जनार्दन—तब तो गर्भमें बड़ा कष्ट रहता होगा ?

विद्यासागर—इसमें क्या संदेह है ? गर्भकष्ट तो भयानक होता ही है।

जनार्दन—गर्भमें यह कष्ट क्यों होता है ?

विद्यासागर—पूर्वजन्मके पापोंके कारण।

जनार्दन—पूर्वजन्म क्या होता है ?

विद्यासागर—जीव पहले जिस मनुष्य-शरीरमें था, वह इसका पूर्वजन्म था। वहाँ इसने कोई पाप किया था, उसीके कारण इसको विशेष कष्ट हुआ।

जनार्दन—पाप किसे कहते हैं ?

विद्यासागर—झूठ बोलना, कपट करना, चोरी करना, परस्त्री-गमन करना, मांस-मदिरा खाना, दूसरोंको कष्ट पहुँचाना आदि जिन आचरणोंका शास्त्रोंमें निषेध किया गया है, वे सभी पाप हैं।

जनार्दन—शास्त्र क्या होते हैं ?

विद्यासागर—श्रुति-स्मृति, इतिहास-पुराण आदि धर्मग्रन्थ शास्त्र हैं।

जनार्दन—अपने घरमें ये हैं ?

विद्यासागर—नहीं।

जनार्दन—तो मँगा दो, मैं पढ़ूँगा।

मन्त्री विद्यासागर चुप रहे। उन्होंने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। मन्त्रीकी उपर्युक्त बातोंको सुनकर जनार्दनका चित्त उदास-सा हो गया। वह गर्भ और जन्मके दुःखको समझकर मन-ही-मन चिन्ता करने लगा—'अहो ! कैसा कष्ट है' उसका प्रफुल्ल मुखकमल कुम्हला गया। उसके मुखपर विषादकी रेखा प्रत्यक्ष दिखलायी देने लगी। यह देखकर राजाने मन्त्रीसे पूछा—'मन्त्रिवर ! राजकुमारका चेहरा उदास क्यों है ?'

विद्यासागरने कहा—लड़का पैदा हुआ है, इससे इसके चित्तमें कुछ ग्लानि-सी है।

राजा बोला—लड़का होनेसे तो उत्साह और प्रसन्नता होनी चाहिये। फिर उन्होंने जनार्दनसे पूछा 'तुम्हारे चेहरेपर उदासी क्यों है ?'

जनार्दन—ऐसे ही है।

राजा विष्वक्सेनने फिर मन्त्रीको आदेश दिया कि इसे हवाखोरीके लिये ले जाओ और चित्तकी प्रसन्नताके लिये बाग-बगीचोंमें घुमा लाओ।

विद्यासागरने वैसा ही किया। बढ़िया घोड़े जुती हुई एक सुन्दर बग्घीमें बिठलाकर वह उसे हवाखोरीके लिये शहरके बाहर बगीचोंमें ले गया। शहरसे बाहर निकलते ही जनार्दनकी एक गलित कुष्ठीपर दृष्टि पड़ी, उस कुष्ठग्रस्त मनुष्यके हाथकी अँगुलियाँ गिरी हुई थीं; पैर, कान, नाक, आँख बेडौल थे। वह लँगड़ाता हुआ चल रहा था।

जनार्दनने पूछा—मन्त्रीजी ! यह क्या है ?

विद्यासागर—यह कुष्ठरोगी है।

जनार्दन—इसकी ऐसी हालत क्यों हो गयी ?

विद्यासागर—पूर्वजन्मके बड़े भारी पापोंके कारण।

जनार्दन—क्या मेरी भी यह हालत हो सकती है ?

विद्यासागर—परमात्मा न करे, ऐसा हो। आप तो पुण्यात्मा हैं।

जनार्दन—हो तो सकती है न ?

विद्यासागर—कुमार ! जो बहुत पापी होता है, उसीके यह रोग होता है। आपके विषयमें कैसे क्या कहूँ ? इतना अवश्य है कि आपके भी यदि पूर्वके बड़े पाप हों तो आपकी भी यह दशा हो सकती है।

जनार्दन—इन भारी-भारी पापोंका तथा उनके फलोंका वर्णन जिन ग्रन्थोंमें हो, उन ग्रन्थोंको मेरे लिये मँगवा दीजिये। मैंने पहले भी आपसे कहा था। अब शीघ्र ही मँगा दें।

विद्यासागर—आपके पिताजीका आदेश होनेपर मँगवाये जा सकते हैं।

इतनेमें ही आगे एक दूसरा ऐसा मनुष्य मिला जिसके शरीरपर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। बाल पककर सफेद हो गये थे, अङ्ग सूखे हुए थे, आँखोंकी ज्योति मन्द पड़ गयी थी। कमर झुकी थी, वह लकड़ीके सहारे कुबड़ाकर चल रहा था, उसके हाथ-पैर काँप रहे थे एवं बार-बार कफ और खाँसीके कष्टके कारण वह बहुत तंग हो रहा था, उसको देखकर राजकुमारने पूछा—'यह कौन है ?'

विद्यासागर—यह नब्बे वर्षका बूढ़ा आदमी है।

जनार्दन—जब मैं नब्बे वर्षका हो जाऊँगा, तब क्या मेरी भी यही दशा होगी ?

विद्यासागर—कुमार ! आप दीर्घायु हों ! मनुष्य जब वृद्ध होता है, तब सभीकी यही दशा होती है।

यह सुनकर राजकुमार जनार्दनको बड़ी ही चिन्ता हुई कि मेरी भी ऐसी दशा हो सकती है। इस प्रकार व्याधि तथा जरासे पीड़ित पुरुषोंको देखकर राजकुमारके मनमें शरीरकी स्वस्थता और सुन्दरतापर अनास्था हो गयी।

तदनन्तर लौटते समय रास्तेमें श्मशानभूमि पड़ी। वहाँ एक मुर्दा तो जल रहा था और एक दूसरे मुर्देको कितने ही लोग 'राम-नाम सत्य है' पुकारते हुए मरघटकी ओर लिये आ रहे थे और कुछ मनुष्य उनके पीछे रोते हुए चल रहे थे।

कुमारने पूछा—यह कौन स्थान है ?

विद्यासागर—यह श्मशानभूमि है।

जनार्दन—यहाँ यह क्या होता है ?

विद्यासागर—जो आदमी मर जाता है, उसे यहाँ लाकर जलाया जाता है।

जनार्दन—यह जुलूस किसका आ रहा है ? जुलूसके पीछे चलनेवाले लोग रोते क्यों हैं ?

विद्यासागर—मालूम होता है, किसी जवान आदमीकी मृत्यु हो गयी है, उसके घरवाले श्मशानभूमिमें उसके शवको ला रहे हैं। ये रोनेवाले लोग उसके पिता-बन्धु आदि कुटुम्बी प्रतीत होते हैं।

जनार्दन—मृत्यु और शव किसे कहते हैं ?

विद्यासागर—इस शरीरसे मन, इन्द्रिय और प्राणका निकल जाना 'मृत्यु' है। जब आदमी मर जाता है, तब उसके शरीरको शव कहा जाता है और फिर घरवाले उसे यहाँ लाकर जला देते हैं एवं वापस घर चले जाते हैं।

जनार्दन—तो फिर ये रोते क्यों हैं ?

विद्यासागर—मालूम होता है, मरनेवालेका इन सबके साथ बहुत प्रेम रहा है। अब वह पुरुष सदाके लिये इनसे बिछुड़ गया है, इस बिछोहके दुःखसे ये घरवाले रो रहे हैं।

जनार्दन—क्या हम भी एक दिन मरेंगे ?

विद्यासागर—कुमार ! ऐसा न कहें। परमात्मा आपको सौ वर्षकी आयु दें।

जनार्दन—जो कुछ भी हो, पर आखिर एक दिन तो मरना ही होगा न ?

विद्यासागर—कुमार ! एक दिन तो सभीको मरना है। जो पैदा हुआ है, उसका एक दिन मरना अनिवार्य है।

मन्त्रीके वचन सुनकर राजकुमार चिन्तामग्न हो गया।

तदनन्तर आगे चलनेपर मार्गमें एक विरक्त महात्मा दिखलायी पड़े। राजकुमारने पूछा—'यह कौन है ?'

विद्यासागर—यह एक जीवन्मुक्त विरक्त महात्मा है।

जनार्दन—जीवन्मुक्त विरक्त महात्मा किसे कहते हैं ?

विद्यासागर—जिन्होंने भजन-ध्यान करके अपने आत्माका कल्याण कर लिया है।

जनार्दन—कल्याण किसे कहते हैं ?

विद्यासागर—विवेक-वैराग्य और भजन-ध्यान आदिके साधनोंद्वारा होनेवाली परम शान्ति और परम आनन्दकी प्राप्तिको 'कल्याण' कहते हैं। कल्याणप्राप्त मनुष्यको ही 'जीवन्मुक्त महात्मा' कहते हैं। वह सदाके लिये परमात्माको प्राप्त हो जाता है और फिर वह लौटकर जन्म-मृत्युरूप असार संसारमें नहीं आता। वस्तुतः संसारमें ऐसे ही पुरुषका जन्म लेना धन्य है।

जनार्दन—क्यों मन्त्री महोदय ! क्या मैं भी ऐसा बन सकता हूँ ?

विद्यासागर—क्यों नहीं, जो हृदयसे चाहता है, वही बन सकता है। किंतु आप अभी बालक हैं, आपको तो संसारके सुख विलास और भोग भोगने चाहिये। यह तो शेष कालकी बात है।

जनार्दन—तो क्या युवावस्थामें आदमी मर नहीं सकता ? अभी रास्तेमें जो जुलूस जाता था, उसके विषयमें तो आपने बतलाया था न कि यह जवान लड़का मर गया है ?

विद्यासागर—मर सकता है। पर पूर्वका कोई बड़ा भारी पाप होता है, तभी मनुष्य युवावस्थामें मरता है।

जनार्दन—तो क्या मेरे युवावस्थामें न मरनेकी कोई गारंटी है ?

विद्यासागर—गारंटी किसीको भी नहीं हो सकती। मरनेमें प्रधान कारण प्रारब्ध ही है।

यह सुनकर राजकुमार जनार्दन बहुत ही शोकातुर हो गया और मन-ही-मन विचारने लगा कि मेरा जल्दी-से-जल्दी कल्याण कैसे हो।

वह घरपर आया। उसके चेहरेपर पहलेकी अपेक्षा अधिक उदासी देखकर राजा विश्वक्सेन चिन्ता करने लगा। तीसरे दिन फिर राजकुमारकी वही अवस्था देखकर विश्वक्सेनने मन्त्रीसे पूछा—'मन्त्री! मैं देखता हूँ, राजकुमारका चेहरा नित्य मुरझाया हुआ रहता है, इसपर प्रसन्नताका कोई चिह्न नहीं दिखायी देता! ऐसा क्यों हो गया?'

विद्यासागर—राजन्! क्या कहा जाय! तीन दिन हो गये, जबसे राजकुमारके पुत्र हुआ है, तभीसे इनकी यही अवस्था है।

राजाने मन्त्रीसे पुनः कहा—इसको खूब सुख-विलास और विषयभोगमें लगाओ। इसके साथी मित्रोंको समझाकर उनके साथ इसको नाटक-खेल और कौतुक-गृहोंमें ले जाओ। खानेके लिये नाना प्रकारके स्वादिष्ट पदार्थ और मेवे-मिष्टान्न दो। सुन्दर-सुन्दर चित्ताकर्षक दृश्य दिखाओ। इत्र, फुलेल आदि इसके सिरपर छिड़को। नृत्य-वाद्य आदिका आयोजन करके इसके मनको राग-रंगमें लगाओ।

मन्त्रीने राजाके आज्ञानुसार सारी व्यवस्था की; किंतु सब निष्फल! राजकुमारको तो अब संसारकी कोई भी वस्तु सुखदायक प्रतीत नहीं होती थी। उसे सभी पदार्थ क्षणभङ्गुर दुःखदायी और अत्यन्त रूखे प्रतीत होते थे। भोगोंमें ग्लानि हो जानेसे वे त्याज्य प्रतीत होते। भोगोंका सेवन राजकुमारको एक महान् झंझट-सा प्रतीत होता। इत्र, फुलेल आदि उसे पेशाबके तुल्य मालूम होते। पुष्पोंकी शय्या, पुष्प और मालाएँ तथा चन्दन उसे वैसे ही नहीं सुहाते, जैसे कफ-खाँसीके रोगीको गीले वस्त्र। वीणा-सितारका बजना—सुनना उसके कानोंको एक कोलाहल-सा प्रतीत होता। नाटक-खेल, कौतुक-तमाशे व्यर्थके झंझट दीखने लगे। बढ़िया-बढ़िया फल, मेवे, मिष्टान्न आदि पदार्थ ज्वराक्रान्त रोगीकी तरह अरुचिकर और बुरे मालूम देने लगे। शरीर और विषयोंमें उसका तीव्र वैराग्य होनेके कारण संसारका कोई भी पदार्थ उसे सुखकर नहीं प्रतीत होता। उसका कहीं किसी भी विषयमें कोई भी आकर्षण नहीं रह गया था।

उसके मुखमण्डलकी विशेष विषण्ण तथा चिन्तायुक्त उदासीन मुद्राको देखकर राजाने पूछा—'तीन दिन हुए, जबसे तुम्हारा लड़का पैदा हुआ है, मैं तुम्हारे मुखको ग्लानियुक्त और चिन्तामग्न देख रहा हूँ, इसका क्या कारण है ? हर्ष और उत्साहके अवसरपर यह ग्लानि और चिन्ता कैसी ?'

जनार्दनने कहा—पिताजी ! आपका कहना सर्वथा युक्तियुक्त और सत्य है। जब लड़का पैदा हुआ, तब गंदी झिल्ली और मलसे संयुक्त उसकी उत्पत्तिको देखकर तथा उसके अत्यन्त दुःखभरे रुदनको सुनकर मुझे बहुत ही दुःख और आश्चर्य हुआ और मैंने बड़े ही आग्रहसे मन्त्रीजीसे पूछा। मन्त्रीजीने बतलाया कि 'इसे यह कष्ट इसके पूर्वजन्मके पापोंके कारण हुआ है।' यह सुनकर मुझे यह चिन्ता हुई कि यदि मैं झूठ-कपट, चोरी-व्यभिचार, हिंसा, मांस, मदिरा आदिके सेवनरूप पाप करूँगा तो मुझे भी इसी तरह गर्भवास और जन्मका दुःख भोगना पड़ेगा।

राजा विश्वक्सेनने कहा—यह सब झूठ है; कपोलकल्पना है। मरनेके बाद फिर जन्म होता ही नहीं। तदनन्तर राजाने झिड़ककर मन्त्रीसे कहा—'क्यों जी ! क्या तुमने ये सब बातें इससे कही थीं ?'

मन्त्री काँपता हुआ बोला—सरकार ! मुझसे कही गयीं।

जनार्दन कहने लगा—आपकी आज्ञासे मन्त्री मुझे हवाखोरीके लिये शहरसे बाहर ले गये थे, तब मैंने मार्गमें एक कुष्ठरोगीको देखा। उसे देखकर मैं उदास हो गया और मैंने इनसे पूछा, तब पता लगा कि पूर्वके बड़े भारी पापोंके कारण यह रोग होता है।

राजा बोला—पाप कोई चीज नहीं है। यह तो इस मन्त्री-जैसे मूर्खोंकी कल्पना है। तुमने जिस कुष्ठीको देखा है, वह वैसा ही जन्मा है और वैसा ही रहेगा। तुमसे उसकी क्या तुलना ? तुम जैसे हो, वैसे ही जन्मे थे और वैसे ही रहोगे।

फिर राजाने कुपित होकर मन्त्रीसे कहा—तुम्हारी बुद्धिपर बड़ी तरस आती है, तुमने इस लड़केको क्यों बहका दिया ?

मन्त्री बोला—सरकार ! इस विषयमें मैं जैसा समझता था, वैसा ही मैंने कहा।

जनार्दनने फिर कहा—उसके बाद रास्तेमें मुझे एक अत्यन्त दुःखी बूढ़ा आदमी दिखायी दिया। मैंने पहले कभी वैसा आदमी नहीं देखा था। जानकारीके लिये मन्त्रीजीसे पूछनेपर उन्होंने बतलाया कि यह वृद्ध है। जब मनुष्य बहुत बड़ी आयुका हो जाता है, तब सभीकी ऐसी ही दशा होती है। यह देखकर मुझे चिन्ता हुई कि एक दिन मेरी भी यही दशा होगी।

राजा बोला—नहीं, कभी नहीं। जो वृद्ध होते हैं, वे वृद्ध ही रहते हैं और जो जवान होते हैं, वे जवान ही रहते हैं।

राजाने फिर क्रोधमें भरकर मन्त्रीसे कहा—क्या तुम्हें यही सब शिक्षा देनेके लिये यहाँ नियुक्त किया गया था ?

मन्त्री बोला—राजकुमारके पूछनेपर मेरी जैसी जानकारी थी, वैसा ही मेरे द्वारा कहा गया।

राजाने कहा—धिक्कार है तुम्हारी जानकारीको ! क्या ये सब बातें बालकोंको कहनेकी होती हैं ?

फिर जनार्दन कहने लगा—पिताजी ! उसके बाद हम जब भ्रमण करके वापस लौट रहे थे, तब मैंने देखा कि बहुत-से आदमी एक मरे हुए आदमीको जला रहे हैं और सब उसके चारों ओर खड़े हैं। उसी समय मैंने देखा कि नगरसे एक जुलूस वहाँ आ रहा है, चार आदमियोंने एक किसी चीजको कंधोंपर उठा रखा है, कुछ लोग 'रामनाम सत्य है' चिल्ला रहे हैं और उसके पीछे-पीछे कुछ आदमी रोते चले आ रहे हैं। यह देखकर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। मन्त्रीजीसे पूछनेपर इन्होंने बतलाया कि 'किसी जवान आदमीकी मृत्यु हो गयी है। इसके घरवाले इसे श्मशानभूमिमें ला रहे हैं और ये रोनेवाले लोग इसके पिता-बन्धु आदि कुटुम्बी प्रतीत होते हैं। ये लोग इसके वियोगमें दुःखके कारण रो रहे हैं।' इस दृश्यको जबसे मैंने देखा, तबसे मुझे मृत्युकी चिन्ता लग रही है। मैं समझता हूँ

कि जब मेरी मृत्यु होगी, तब मेरी भी यही दशा होगी।

विष्वक्सेन बोला—इस मूर्ख मन्त्रीकी बातपर तुम्हें ध्यान न देना चाहिये। जवान आदमीकी कभी मृत्यु हो ही नहीं सकती। इन्होंने जो कुछ कहा है, सब बेसमझीकी बात है।

फिर उसने मन्त्रीसे कहा—क्या तुम्हें हमारे लड़केको इस प्रकार बहकाना उचित था? तुमने सचमुच मुझे बड़ा धोखा दिया।

विद्यासागरने हाथ जोड़कर कहा—सरकार! पूछनेपर जो बात उस समय समझमें आयी, वही कही गयी।

जनार्दनने कहा—उसके बाद जब हमलोगोंने लौटकर शहरमें प्रवेश किया, तब एक गेरुआ वस्त्रधारी पुरुष मिले। पूछनेपर मन्त्रीजीने बतलाया कि 'ये एक जीवन्मुक्त विरक्त महात्मा हैं। इन्होंने भजन-ध्यान और सत्सङ्ग-स्वाध्याय करके अपने आत्माका कल्याण कर लिया है, जिससे इन्हें हर समय परम शान्ति और परम आनन्द रहता है। ये भगवान्‌के परम धाममें चले जायँगे और फिर लौटकर कभी दुःखरूप संसारमें नहीं आयेंगे। वहीं नित्य परम शान्ति और परम आनन्दमें मग्न होकर रहेंगे। इन्हींका जन्म धन्य है।' उसी समयसे मेरे मनमें बार-बार यही आता है कि क्या कभी मैं भी ऐसा बन सकूँगा। पूछनेपर पता लगा कि यह सब बातें श्रुति-स्मृति, इतिहास-पुराणोंमें लिखी हैं। अतः मैंने इन पुस्तकोंको मँगानेके लिये मन्त्रीजीसे कहा था; किंतु उन्होंने उत्तर दिया कि 'मैं आपके पिताजीका आदेश लेकर ही मँगा सकता हूँ।' अतएव पिताजी! अब ये पुस्तकें मुझे शीघ्र मँगवा दीजिये।

विष्वक्सेन बोला—बेटा! ये सब पुस्तकें तुम्हारे देखने लायक नहीं हैं।

राजाने फिर मन्त्रीसे कहा—मालूम होता है, तुमने इन पुस्तकोंके नाम बतलाकर लड़केका मस्तक बिगाड़ दिया। तुम्हारी ही शिक्षाका यह फल है, जो मेरा यह सुकुमार सुन्दर राजकुमार इतनी छोटी उम्रमें ही संसारके विषय-भोगोंसे विरक्त होकर रात-दिन वैराग्य और ज्ञानकी चिन्तामें डूबा रहता है।

मैंने जिस उद्देश्यसे तुमको नियुक्त किया था, उसका विपरीत परिणाम हुआ। तुम मेरे यहाँ रहने योग्य नहीं, तुम्हारी जहाँ इच्छा हो; वहाँ जा सकते हो।

विद्यासागर हाथ जोड़कर बोला—सरकार! मेरी बेसमझीके कारणसे ही यह सब हुआ। लड़केने जो कुछ पूछा, मैंने अपनी समझके अनुसार ठीक-ठीक कह दिया; इसके लिये आप मुझे क्षमा करें।

विष्वक्सेनने कहा—'आग लगे तुम्हारी ऐसी समझपर! मेरा तो बसता हुआ घर ही तुमने उजाड़ दिया। मेरे यहाँ अब तुम्हारी आवश्यकता नहीं।' यह कहकर उसको मन्त्रीपदसे हटा दिया।

जनार्दन बोला—पिताजी! आप ऐसा क्यों कर रहे हैं? इसमें मन्त्रीजीका कुछ भी दोष नहीं है। इन्होंने तो जो कुछ कहा, उचित ही कहा और वह भी मेरे पूछनेपर ही कहा। मुझमें ज्ञान, वैराग्य और भक्तिका लेशमात्र भी नहीं है। हाँ, मैं चाहता हूँ कि मुझे ज्ञान, वैराग्य और भक्तिकी प्राप्ति हो जाय तो मैं भी जीवन्मुक्त महात्मा बनकर अपने आत्माका उद्धार कर लूँ। धन्य है उन पुरुषोंको जिन्होंने संसारसे विरक्त होकर परमात्माके भजन, ध्यान, सत्सङ्ग और स्वाध्यायमें अपना जीवन बिताकर अपने आत्माका कल्याण कर लिया है। आप मुझे आशीर्वाद दें, जिससे इस शरीर और संसारसे विरक्त होकर मेरा मन नित्य-निरन्तर परमात्मामें ही लगा रहे।

इसपर राजा विष्वक्सेनने राजकुमार जनार्दनको इसके विरुद्ध बहुत कुछ समझाया, परंतु उसके एक भी नहीं लगी, क्योंकि राजकुमार योगभ्रष्ट पुरुष तो था ही, मन्त्रीकी शिक्षाने भी उसके हृदयमें विशेष काम किया था। राजकुमार वैराग्यके नशेमें चूर हो गया। वह अहङ्कार और ममतासे रहित होकर संसारसे उपरत रहता हुआ परमात्माकी खोजमें जीवन बिताने लगा।

कुछ दिनों बाद जब उसे तीव्र वैराग्य और उपरति हो गयी, तब वह सहज ही राज्यकी ओरसे सर्वथा बेपरवाह होकर उन महात्माजीके पास चला गया, जिनसे बाल्यावस्थामें उसने यह श्लोक सुना था—

****

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

(गीता १३।८)

इस श्लोकका भाव राजकुमार जनार्दनमें अक्षरशः संघटित था। उसने भक्ति, ज्ञान और वैराग्यके लिये महात्माजीसे प्रार्थना की। तब महात्माजीने उसको आश्वासन देते हुए भक्ति, ज्ञान और वैराग्यकी शिक्षा दी। उन्होंने कहा—

असक्तिरनभिष्वङ्गः पुत्रदारगृहादिषु।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ॥
मयि चानन्ययोगेन भक्तिरव्यभिचारिणी।
विविक्तदेशसेवित्वमरतिर्जनसंसदि ॥
अध्यात्मज्ञाननित्यत्वं तत्त्वज्ञानार्थदर्शनम्।

(गीता १३।९—११)

अभिप्राय यह है कि स्त्री, पुत्र, गृह, शरीर और धन आदि पदार्थोंके साथ मनुष्यका विशेष सम्बन्ध होनेके कारण प्रायः इन्हींमें उसकी विशेष आसक्ति होती है। इन्द्रियोंके शब्दादि विषयोंमें वैराग्य होनेपर भी इनमें छिपी आसक्ति रह जाया करती है, इसलिये मनुष्यको 'आसक्तिका सर्वथा अभाव' करना चाहिये।

यहाँ 'अनभिष्वङ्ग'का अर्थ है—'ममताका अभाव'। ममत्वके कारण ही मनुष्यका स्त्री-पुत्रादिसे घनिष्ट सम्बन्ध हो जाता है। उससे उनके सुख-दुःख और लाभ-हानिसे वह स्वयं सुखी-दुःखी होता रहता है। ममताके अभावसे ही इसका अभाव हो सकता है। इसलिये मनुष्यको इन सब पदार्थोंसे ममताका अभाव करना चाहिये।

अनुकूल व्यक्ति, क्रिया, घटना और पदार्थोंका संयोग तथा प्रतिकूलका वियोग सबको 'इष्ट' है। इसी प्रकार अनुकूलका वियोग और प्रतिकूलका संयोग 'अनिष्ट' है। इन 'इष्ट' और 'अनिष्ट'के साथ सम्बन्ध होनेपर हर्ष-

शोकादिका न होना अर्थात् अनुकूलके संयोग और प्रतिकूलके वियोगसे चित्तमें राग, काम और हर्ष आदि न होना तथा प्रतिकूलके संयोग और अनुकूलके वियोगसे किसी प्रकारके द्वेष, शोक, भय और क्रोध आदिका न होना—सदा ही निर्विकार, एकरस सम रहना—इसको इष्ट और अनिष्टकी प्राप्तिमें 'समचित्तता' कहते हैं।

भगवान् ही सर्वश्रेष्ठ हैं और वे ही हमारे स्वामी, शरण ग्रहण करने योग्य, परम गति, परम आश्रय, माता-पिता, भाई-बन्धु, परम हितकारी, परम आत्मीय और सर्वस्व हैं; उनको छोड़कर हमारा अन्य कोई भी नहीं है—इस भावसे जो भगवान्‌के साथ अनन्य सम्बन्ध है, उसका नाम 'अनन्ययोग' है। इस प्रकारके सम्बन्धसे केवल भगवान्‌में ही अटल और पूर्ण विशुद्ध प्रेम करके निरन्तर भगवान्‌का ही भजन-ध्यान करते रहना ही 'अनन्ययोग'के द्वारा भगवान्‌में अव्यभिचारिणी भक्ति करना है।

इस प्रकारकी भक्ति करनेवाले मनुष्यमें न तो स्वार्थ और अभिमानका लेश रहता है और न संसारकी किसी भी वस्तुमें उसका ममत्व ही रह जाता है। संसारके साथ उसका भगवान्‌के सम्बन्धसे ही सम्बन्ध रहता है, किसीसे भी किसी प्रकारका स्वतन्त्र सम्बन्ध नहीं रहता। वह सब कुछ भगवान्‌का ही समझता है तथा श्रद्धा और प्रेमके साथ निष्कामभावसे निरन्तर भगवान्‌का ही चिन्तन करता रहता है। उसकी जो भी क्रिया होती है, वह सब भगवान्‌के लिये ही होती है।

साधकको सदा विविक्त देशका सेवन करना चाहिये। जहाँ किसी प्रकारका शोर-गुल या भीड़-भाड़ न हो, जहाँ दूसरा कोई न रहता हो, जहाँ रहनेमें किसीको भी आपत्ति या क्षोभ न हो, जहाँ किसी प्रकारकी गंदगी न हो, जहाँ काँटे-कंकड़ और कूड़ा-कर्कट न हों, जहाँका प्राकृतिक दृश्य सुन्दर हो, जहाँके जलवायु और वातावरण निर्मल और पवित्र हों, किसी प्रकारकी बीमारी न हो, हिंसक प्राणियोंका और हिंसाका अभाव हो और जहाँ स्वाभाविक ही सात्त्विकताके परमाणु भरे हों—ऐसे देवालय, तपोभूमि, गङ्गा

आदि पवित्र नदियोंके तट और पवित्र वन, गिरि-गुहा आदि निर्जन एकान्त और शुद्ध देशको 'विविक्त देश' कहते हैं तथा ज्ञानको प्राप्त करनेकी साधनाके लिये ऐसे स्थानमें निवास करना ही उसका सेवन करना है।

साधकका कभी भी प्रमादी और विषयासक्त मनुष्योंके समुदायमें प्रेम नहीं होना चाहिये। यहाँ 'जनसंसदि' पद 'प्रमादी' और 'विषयासक्त' सांसारिक मनुष्योंके समुदायका वाचक है। ऐसे लोगोंके सङ्गको साधनमें सब प्रकारसे बाधक समझकर उससे विरक्त रहना ही उनमें प्रेम नहीं करना है। संत, महात्मा और साधक पुरुषोंका सङ्ग तो साधनमें सहायक होता है; अतः उनके समुदायका वाचक यहाँ 'जनसंसदि' पद नहीं समझना चाहिये।

आत्मा नित्य, चेतन, निर्विकार और अविनाशी है। उससे भिन्न जो नाशवान्, जड, विकारी और परिवर्तनशील वस्तुएँ प्रतीत होती हैं—वे सब अनात्मा हैं; आत्माका उनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे इस प्रकार आत्मतत्त्वको भलीभाँति समझ लेना ही 'अध्यात्मज्ञान' है और बुद्धिमें ठीक वैसा ही दृढ़ निश्चय करके मनसे उस आत्मतत्त्वका नित्य-निरन्तर मनन करते रहना 'अध्यात्मज्ञानमें नित्य स्थित रहना' है।

तत्त्वज्ञानका अर्थ है—सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा; क्योंकि तत्त्वज्ञानसे उन्हींकी प्राप्ति होती है। उन सच्चिदानन्दघन गुणातीत परमात्माका सर्वत्र समभावसे नित्य-निरन्तर ध्यान करते रहना ही उस अर्थका दर्शन करना है।

इस प्रकार उपदेश देकर महात्माजी चुप हो गये। राजकुमार पात्र तो था ही, महात्माजीकी शिक्षाके अनुसार साधन करनेसे उसे शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो गयी।

इधर दूसरे दिन प्रातःकाल जब राजा उठा, तब पता लगा कि राजकुमार आज रातमें महलसे निकलकर कहीं चला गया। इधर-उधर चारों ओर बड़ी खोज करायी गयी किंतु कहीं भी पता नहीं लगा। तब राजा विष्वक्सेन बहुत दुःखित हो गया।

कुछ दिनों बाद राजा उन महात्माजीका दर्शन करने गया, जिनके बतलाये हुए अनुष्ठानसे राजकुमार उत्पन्न हुआ था। राजाने महात्माजीको साष्टाङ्ग अभिवादन किया और कहा—'महाराजजी! आपने मुझको जो लड़का दिया था, वह कई दिनोंसे लापता हो गया है।'

महात्माजीने कहा—क्या तुमको पता नहीं, वह तो कई दिनोंसे मेरे पास है। वह सदा-सर्वदा ज्ञान-ध्यानमें निमग्न रहता है। उसने तो अपने जीवनको सफल बना लिया। मैंने तो तुमसे पहले ही कहा था कि यह लड़का एक बहुत उच्च कोटिका विरक्त महापुरुष बननेवाला है, वही बात आज प्रत्यक्ष हो गयी। राजन्! तुम्हारा जन्म भी धन्य है, जो तुमने ऐसे पुत्रको जन्म दिया और यह लड़का तो सौभाग्यशाली है ही।

राजकुमारकी इतनी शीघ्र और आशातीत उन्नति सुनकर तथा फिर उसकी स्थितिको प्रत्यक्ष देखकर राजाको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। उसे जो पुत्रके घरसे निकल जानेका दुःख था वह सब शान्त हो गया। उसने अपना बड़ा सौभाग्य समझा।

तदनन्तर राजाने महात्माजीसे प्रार्थना की कि मुझे ऐसा कोई उपदेश करें, जिससे शरीर और संसारसे वैराग्य हो जाय। इसपर महात्माजीने बड़ी प्रसन्नतासे कहा—

इन्द्रियार्थेषु वैराग्यमनहंकार एव च।
जन्ममृत्युजराव्याधिदुःखदोषानुदर्शनम् ॥

अभिप्राय यह है कि इस लोक और परलोकके जितने भी शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्धरूप विषय-पदार्थ हैं—अन्तःकरण और इन्द्रियोंद्वारा जिनका भोग किया जाता है और अज्ञानके कारण जिनको मनुष्य सुखके हेतु समझता है, किंतु वास्तवमें जो दुःखके कारण हैं—उन सबमें प्रीतिका सर्वथा अभाव हो जाना '**इन्द्रियार्थेषु वैराग्यम्**' यानी इन्द्रियोंके विषयोंमें वैराग्य होना है।

मन, बुद्धि, इन्द्रिय और शरीर—इन सबमें जो 'अहं' बुद्धि हो

रही है—अर्थात् अज्ञानके कारण जो इन अनात्म वस्तुओंमें आत्मबुद्धि हो रही है—इस देहाभिमानका सर्वथा अभाव हो जाना 'अनहङ्कार' कहलाता है।

जन्मका कष्ट सहज नहीं है। पहले तो असहाय जीवको माताके गर्भमें लम्बे समयतक भाँति-भाँतिके क्लेश सहन करने पड़ते हैं; फिर जन्मके समय योनिद्वारसे निकलनेमें असह्य यन्त्रणा भोगनी पड़ती है। नाना प्रकारकी योनियोंमें बार-बार जन्म ग्रहण करनेमें ये जन्म-दुःख होते हैं। मृत्युकालमें भी महान् कष्ट होता है। जिस शरीर और घरमें आजीवन ममता रही, उसे बलात् छोड़कर जाना पड़ता है। मरणसमयके निराश नेत्रोंको और शारीरिक पीड़ाको देखकर उस समयकी यन्त्रणाका बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है। बुढ़ापेकी यन्त्रणा भी कम नहीं होती, इन्द्रियाँ शिथिल और शक्तिहीन हो जाती हैं, शरीर जर्जर हो जाता है, मनमें नित्य लालसाकी तरङ्गें उठती रहती हैं, असहाय अवस्था हो जाती है। इस अशक्त अवस्थामें जो कष्ट होता है, वह बड़ा ही भयानक होता है। इसी प्रकार बीमारीकी पीड़ा भी बड़ी दुःखदायिनी होती है। शरीर क्षीण हो गया, नाना प्रकारके असह्य कष्ट हो रहे हैं, दूसरोंकी अधीनता है, निरुपाय स्थिति है, यही सब जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिके दुःख हैं। इन दुःखोंको बार-बार स्मरण करना और इनपर विचार करना ही इनमें दुःखोंको देखना है।

जीवोंको ये जन्म, मृत्यु, जरा व्याधि प्राप्त होते हैं—पापोंके परिणामस्वरूप; अतएव ये चारों ही दोषमय हैं। इसीका बार-बार विचार करना इनमें दोषोंको देखना है।

यों तो एक चेतन आत्माको छोड़कर वस्तुतः संसारमें ऐसी कोई भी वस्तु नहीं है, जिसमें ये चारों दोष न हों। जड मकान एक दिन बनता है, यह उसका जन्म हुआ, कहींसे टूट-फूट जाता है, यह व्याधि हुई; मरम्मत करायी, इलाज हुआ; पुराना हो जाता है, बुढ़ापा आ गया; अब मरम्मत नहीं हो सकती। फिर जीर्ण होकर गिर जाता है, मृत्यु हो गयी। छोटी-बड़ी सभी चीजोंकी यही अवस्था है। इस प्रकार जगत्की प्रत्येक वस्तुको ही जन्म,

मृत्यु, जरा तथा व्याधिमय देख-देखकर उनसे वैराग्य करना चाहिये।

महात्माजीके इस सुन्दर उपदेशको सुनकर राजा अपने राजमहलपर लौट आया और उनके बतलाये हुए साधनके अनुसार प्रयत्न करने लगा। इससे थोड़े ही समयमें राजाको शरीर और संसारसे तीव्र वैराग्य हो गया। तब रानीको साथ लेकर राजा पुनः महात्माजीके पास गया और बोला—'आपके उपदेशसे मुझे बहुत लाभ हुआ। अब मेरी यह इच्छा है कि जनार्दनका युवराजपदपर अभिषेक करके मैं भक्ति, ज्ञान, वैराग्यमें ही अपना शेष जीवन बिताऊँ।' इसपर महात्माजीने जनार्दनको बुलाकर कहा— 'वत्स ! तुम राज्यका कार्य करो, अब तुम्हें कोई भय नहीं है। अतः अब अपने पिताको अवकाश दो, जिससे ये भी भजन-ध्यान करके अपने आत्माका कल्याण करें।'

जनार्दन नित्य विज्ञानानन्दघन परमात्मामें स्थित था ही, वह बड़ी प्रसन्नतासे पिताके आज्ञानुसार राज्यकार्य करने लगा। अब रानीके सहित राजा विष्वक्सेन समय-समयपर महात्माजीका सत्सङ्ग करने लगा और उनके बतलाये हुए साधनके अनुसार तत्परतासे चेष्टा भी करने लगा।

एक दिन राजा विष्वक्सेनने महात्माजीके चरणोंमें नमस्कार करके उनसे विनय और करुणाभावपूर्वक प्रार्थना की—'महाराजजी ! मुझे भक्ति, ज्ञान, वैराग्यकी ऐसी शिक्षा दीजिये, जिससे मेरी भी स्थिति जनार्दनकी भाँति नित्य-निरन्तर अटल हो जाय।'

तब महात्माजीने जो शिक्षा विस्तारपूर्वक जनार्दनको दी थी, वही राजाको भी दी। महात्माजीकी शिक्षा सुनकर राजा और रानी—दोनोंने श्रद्धा और प्रेमपूर्वक बड़ी लगनके साथ उनके बतलाये हुए साधनके अनुसार प्रयत्न किया; जिसके फलस्वरूप राजा और रानी दोनोंको ही परमात्माकी प्राप्ति हो गयी।

इस कहानीसे हमलोगोंको यह शिक्षा लेनी चाहिये कि हम भी शरीर और संसारसे विरक्त राजकुमार जनार्दनकी भाँति ऊपर बतलाये हुए साधनके अनुसार अपने बचे हुए जीवनको ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, सत्सङ्ग और स्वाध्यायमें लगाकर सफल बनावें।

भगवत्प्राप्तिके सरल उपाय तथा प्रेमका रहस्य और प्रभाव

मूक चाण्डाल अपने माता-पिताकी निरन्तर प्रेमके साथ श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करता था, उसके श्रद्धा-भक्तिपूर्वक सेवा करनेके प्रभावसे स्वयं भगवान् ब्राह्मणका रूप धारण कर सदा उसके घरमें रहा करते थे। परिणामतः मूक चाण्डाल जब भगवान्‌के परमधामको गया, तब उसके माता-पिता भी साथमें परमधामको गये—इतना ही नहीं, उसके घरमें जो जीव-जन्तु थे, वे भी उसके प्रभावसे दिव्यरूप धारण कर भगवान्‌के परमधाममें चले गये। उसमें प्रभाव क्या था ? बस, माता-पिताकी सेवाका ही प्रभाव था।

इसी प्रकार शुभा नामकी एक स्त्री अपने पतिकी श्रद्धा-भक्तिपूर्वक प्रेमसे नित्य सेवा करती थी। उस सेवाके प्रभावसे वह अपने पतिके साथ ही विमानमें बैठकर भगवान्‌के परमधाममें चली गयी। इस बातको जब नरोत्तम ब्राह्मणने भी देखा तब भगवान्‌से पूछा कि भगवन् ! क्या बात है ? भगवान्‌ने बतलाया कि यह मूक चाण्डाल अपने माता-पिताकी सेवा करनेके प्रभावसे और यह शुभा नामकी स्त्री अपने पतिकी सेवा करनेके प्रभावसे मेरे परमधामको जा रहे हैं। इसी कारण मैं इन दोनोंके घरमें अलग-अलग रूप धारण कर सदा वास करता हूँ। उनको तीनों कालोंका ज्ञान है—तुम्हारी सारी घटना उन्हें ज्ञात है। इस प्रकार तीनों बातोंकी प्रशंसा की। मूक चाण्डालमें एक विशेषता और थी, वह यह कि उसका मकान आकाशमें झूला करता, जमीनपर नहीं। मकानका आकाशमें झूलना और तीनों कालोंका ज्ञान होना—यह तो लौकिक प्रभाव है, लौकिक—साधारण प्रभाव है, सांसारिक प्रभाव है, ऋद्धि-सिद्धियोंवाला प्रभाव है। परंतु

भगवान्‌का उसके घरमें निवास करना और उसके घरमें रहनेवाले जीव-जन्तुओंका भी उसके साथ परमधामको चला जाना अलौकिक—पारमार्थिक प्रभाव है, यह असली प्रभाव है। हमलोगोंको असली प्रभावकी तरफ ज्यादा ध्यान देना चाहिये। लौकिक प्रभाव चाहे हो या न हो—उसकी कोई विशेष इज्जत नहीं है। भगवान्‌ने गोवर्धन पहाड़को धारण कर लिया—यह लौकिक प्रभाव है।

जब सेतुबन्ध-रामेश्वरका पुल बाँधा गया तो हनुमान्-जैसे बन्दर बड़े-बड़े पहाड़ ढोकर लाये थे, पर उनको किसीने "गिरिधर" नहीं कहा और भगवान्‌को कहते हैं—"गिरिधर"। बड़ोंको बड़ाई मिल जाया करती है। इसमें कोई वैसी बात नहीं है कि वे पहाड़को धारण करनेसे "गिरिधर" कहलाये। यह तो लौकिक प्रभाव था। भगवान्‌का अलौकिक प्रभाव तो इस प्रकार है—सैकड़ों-हजारों रूप धारण कर लेना। ग्वालबालोंके रूपमें, बछड़ोंके रूपमें, उनकी गायोंका, उनकी माताओंका कल्याण कर देना। भगवान् लड़का बने तो उसका भी कल्याण किये। बड़े दयालु हैं, उनकी दया अपरम्पार है। कपटवेश धारण करके खोटी नीयतसे लड़का बनानेवाली पूतना जब अपने स्तनोंमें विष लगाकर हलाहल जहर पिलाने आयी और पिला दी, तब भगवान्‌ने सोचा कि ठीक है—इसने तो मुझे जहर पिलाया, पर मेरा क्या कर्तव्य है? मेरा तो काम है—"अपने पास कोई भी आये, उसका उद्धार करना।" भगवान्‌ने उसका उद्धार कर दिया।

भगवान् श्रीरामचन्द्रजी महाराजने तो सबका उद्धार कर दिया "सरयूकी धारासे"। सरयूकी धारासे सबको पार कर दिया। उन्होंने कहा कि कोई भी मेरे साथ चलना चाहे वह सरयूमें स्नान कर ले तो बेड़ा पार और श्रीकृष्णजी महाराजने एका नामकी घासद्वारा सबको आपसमें मार करवाकर पार कर दिया। भगवान् रामचन्द्रजीने तो सबका उद्धार किया सरयूकी धारासे और कृष्णचन्द्रजीने सबका उद्धार किया एकेकी मारसे। भगवान् श्रीकृष्णने

महाभारत-युद्धके समय पहले प्रतिज्ञा कर ली कि मैं युद्धमें किसीको शस्त्रसे माँरूगा नहीं, क्योंकि मारनेसे मुक्ति हो जायगी। यह तो भगवान्‌ने एक प्रकारसे भेदभाव ही किया कि अपने कुटुम्बका तो उद्धार किया और महाभारत-युद्धमें उन मरनेवालोंको दूसरों-दूसरोंसे ही मरवाया।

क्या उसमें कोई कारण था ?

हाँ ! कारण तो यही है कि जिस वंशमें जन्म लिया, उनका तो उद्धार होना ही चाहिये।

कुलं पवित्रं जननी कृतार्था वसुन्धरा पुण्यवती च तेन।
अपारसंवित्सुखसागरेऽस्मिँल्लीनं परे ब्रह्मणि यस्य चेतः॥

(स्कन्द० माहे० कौमार० ५५। १४०)

तात्पर्य यह कि जिसका ज्ञान-स्वरूप सुखसागर परब्रह्म परमात्मामें चित्त विलीन हो जाता है, जिसके आनन्दका सागरकी तरह पार नहीं है, ऐसा जो महात्मा पुरुष है, उसके संसर्गसे, संसर्गके प्रभावसे उसका कुल पवित्र हो जाता है और जन्म देनेवाली माता तो मुक्त हो ही जाती है। तथा जहाँ उसका चरण टिक जाय, वह भूमि भी पवित्र हो जाती है। यह बात तो भक्तोंमें है, फिर भगवान्‌की बात तो इससे ज्यादा होनी ही चाहिये। भगवान् कहते हैं कि जो अपने साथ बुराई करे, उसके साथ भी भलाई करनी चाहिये। इसे भगवान्‌ने पूतनाका उद्धार करके दिखलाया।

यदि कहो कि विष देनेवाली पूतनाका उद्धार कर दिया तो अमृतके समान दूध पिलानेवाली माता यशोदाको भगवान् क्या देंगे ? उसके लिये तो सबसे बड़ी है मुक्ति।

ना, मुक्तिसे भी बढ़कर एक चीज है।

वह क्या है ?

भगवान् खुद ही हैं। भगवान्‌ने खुद ही अपने-आपको यशोदाको अर्पण कर दिया।

उसके आँगनमें खेलनेसे, उसका बच्चा होकर वात्सल्य-भावसे प्रेम

करनेसे और अपने-आपको उसके समर्पण कर देनेसे यशोदाके घरके आँगनकी जो रेत है, जिसको हम सब मिट्टी कहते हैं, उसमें मुक्ति प्रवेश कर गयी। परिणामतः यशोदा किसीको मुट्ठीमें रेत भी भर कर दे दे तो उसकी मुक्ति हो जाय या स्वयं रेत ले ले तो उसकी मुक्ति हो जाय, क्योंकि उस रेतमें भगवान्‌का प्रभाव प्रवेश कर गया। यशोदा तो मुक्तिका सदाव्रत देती रहती—कोई भी चला जाय, उसीका कल्याण। इसलिये यशोदाका दर्जा उससे ज्यादा है, जैसे काशीमें शिवजीका। काशीमें कोई भी चला जाय और वहाँ शरीर छोड़ दे तो शिवजी उसको मुक्ति दे देते हैं। यह काम तो बहुत ठीक है। ऐसे उदारभाववाली एक कहानी सुनी जाती है।

एक कायस्थ था। वह बड़े उदारभावका था। यह कहानी है, घटी हुई घटना नहीं है। परंतु अपने लोगोंको तो इस कहानीका भाव लेना है। कहानी भले ही हो पर इसका भाव अनुकरणीय है ही।

एक समयकी बात है एक हाथी यमराजके यहाँ पहुँचा। यमराज उससे हँसी-दिल्लगी करने लगे, बोले—अरे तेरी काया तो पहाड़के समान है और तू एक छोटे-से मनुष्यके वशमें कैसे हो गया ?

हाथीने कहा—महाराज ! मनुष्यके वशमें तो मैं क्या, मनुष्यके वशमें तो आप भी हो सकते हैं, यहाँतक कि भगवान् भी हो सकते हैं। मनुष्य ही एक ऐसा है कि भगवान्‌को भी वशमें कर सकता है और आपको भी वशमें कर सकता है, मेरी तो बात ही क्या है ?

यमराज बोले—अरे गजराज ! हमारे यहाँ तो रोज हजारों मनुष्य आते हैं।

हाथीने कहा—हाँ महाराज ! आपके यहाँ जो आते हैं वे मरकर आते हैं और मैं था जीवित मनुष्यके वशमें। जीवित मनुष्यसे आपका कभी काम नहीं पड़ा, यदि जीवितके साथ काम पड़ा तो सावित्रीके साथ, जिसके वशमें हो ही गये।

यह सुनकर यमराजने अपने दूतोंसे कहा—अच्छा एक जीवित मनुष्य

ले आओ। वे दूत रातके समय एक कायस्थके घर आये। गर्मीका महीना था। वह अपने तीन मंजिले महलके छतपर खाटके ऊपर सोया था। दूत खाटके चारों पायोंको पकड़कर आकाश-मार्गसे उड़ चले। जब दूत खाटके साथ उसे लेकर उड़े तो उसकी आँख खुल गयी। उसने खाटपर अपनेको आकाशमें उड़ते देखकर सोचा कि यह क्या बला है? फिर सोचा यदि हिलूँ-चलूँ तो गिर जाऊँगा, फिर तो मर जाऊँगा। अच्छा देख तो लूँ—कौन है? मुँह निकालकर चारों तरफ देखा तो यमके दूतोंके लक्षण दीखे। कायस्थने अपने मनमें विचारा—अरे, यमके दूत तो मरनेके बाद पापी आदमीको ले जाया करते हैं, मुझे तो जीते-जी ही ले जा रहे हैं। फिर सोचा कि कहीं स्वप्न तो नहीं है? नहीं-नहीं, यह स्वप्न कहाँ? मैं तो जगा हुआ हूँ, बैठा हूँ। फिर विचारा—कहीं मेरे चित्तमें भ्रम तो नहीं हो गया है? नहीं-नहीं, भ्रमकी तो कोई बात ही नहीं है। बात सोलहो आने सच थी, जँच गयी। कायस्थने कहा—अरे यमके दूतो! मुझे कहाँ ले जा रहे हो। यमके दूतोंने कहा—यमके पास। उसके मनमें स्फुरणा हुई, उसने अपने जेबसे कागज-पेंसिल निकाली और धर्मराजको एक चिट्ठी लिखी—'धर्मराजसे हरि भगवान्‌का यथायोग्य वञ्चना। इस नये गुमाश्तेको भेज रहा हूँ, इसके हुक्मके अनुसार सब काम करना' और नीचे हस्ताक्षरकी जगहपर हरिका नाम लिख दिया—"श्रीहरिः"। फिर उसे जेबमें रख लिया। यमदूत इसे उसी अवस्थामें लेकर सभामें पहुँचे। उस समय सभा लगी हुई नहीं थी। सभामें जाकर खटिया उतार दी। अब प्रातःकाल हुआ। प्रातःकाल होनेके बाद सभा जुटी। यमराज आये। इनका यमराज भी नाम है और धर्मराज भी। कायस्थने अपना लिखा वह पत्र ले जाकर यमराजके सामने पेश कर दिया। दैवयोगसे हरिके अक्षरों-जैसे अक्षर मिल गये और नीचे सही "श्रीहरिः" की मिल गयी। कागज पढ़ते ही यमराज झट उठ खड़े हो गये और हाथ जोड़कर बोले—बैठिये महाराज! यमराजने उसे तख्तेपर बैठा दिया और आप नीचे उसके चरणोंमें बैठ गये और गुमाश्तेके कहे—अनुसार काम होने लगा।

अब आने लगे अपराधी। चित्रगुप्तजी पासमें ही बैठे थे। चित्रगुप्तसे यमराजने एक अपराधीके विषयमें पूछा—क्यों चित्रगुप्तजी यह कौन है, कैसा है ? चित्रगुप्तजीने कहा—महाराज ! यह बनिया है बनिया।

जो कायस्थ नया गुमाश्ता बना था, उसने कहा—क्या करता है ?

चित्रगुप्तने कहा—इसका व्यवहार तो झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी—पाप-ही-पाप्का रहा।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठइ भोजन झूठ चबेना॥

गुमाश्तेने कहा—अरे ! लेना-देना तो झूठा हो सकता है, पर झूठा भोजन और झूठ चबेना कैसे—खाना-पीना झूठा कैसे ?

चित्रगुप्त बोले—साहब ! बात यह है कि "आजकल अन्नपर कंट्रोल हो रहा है, अच्छा अन्न कहींसे लाते समय पता लग जाय तो सरकार पकड़ ले"—इसलिये ये खाते तो हैं गेहूँ तथा चावल और कहते हैं कि आजकल हम तो मिलावट अन्न अर्थात् सस्ता अन्न (बेझड़) खाते हैं—इस प्रकारसे झूठ बोलते हैं। इसलिये ***"झूठइ भोजन झूठ चबेना"*** है।

कायस्थने कहा—ठीक है ! तो इसके विषयमें क्या किया जाय ?

चित्रगुप्त बोले—इसे महाराज ! "कुम्भीपाक" नरकमें डलवा दिया जाय।

कायस्थने कहा—तुम्हें मालूम नहीं है ?

चित्रगुप्त बोले—क्या ?

कायस्थने कहा—इसे वैकुण्ठमें जाने दो।

चित्रगुप्त बोले—महाराज ! यह वैकुण्ठके लायक नहीं है।

कायस्थने कहा—तुम्हें इस बातसे क्या मतलब ? चलने दो बस।

थोड़ी देरके बाद ग्वालिन आयी। इसके विषयमें चित्रगुप्तने कहा—महाराज ! यह ग्वालिन दूध बेचती है, यह जो दूध बालकोंको देती है, उससे बालकोंको बीमारी हो जाती है।

कायस्थने पूछा—कैसे ?

चित्रगुप्तने कहा—दूधमें यह आरारोट मिला देती है—तालाबका

सफेद-सफेद जल मिलाकर दूध देती है, उसमें मिट्टी मिली होनेके कारण बालकोंको बीमारी हो जाती है। इसलिये यह बड़ा भारी पाप करती है, लोगोंको धोखा देती है। जिन बालकोंको दूध पिलाया जाता है, उनके साथ ऐसा अन्याय करती है। महाराज ! इसके हिसाबसे ऐसेको हमारे यहाँ "रौरवनरक" में डाला जाता है।

कायस्थ बोला—नहीं-नहीं, इसे वैकुण्ठमें जाने दो।

चित्रगुप्तने कहा—यह भी वैकुण्ठमें ?

कायस्थ बोला—अरे, तुम देखते रहो। कोई भी आये, उसे वैकुण्ठमें भेजो। थोड़ी देरके बाद एक कलवार आया।

कायस्थने पूछा—यह कौन है ?

चित्रगुप्तने कहा—कलवार।

कायस्थने पूछा—इसने क्या किया है ?

चित्रगुप्तने कहा—इसके मदिराकी भट्ठी है। महाराज ! आप तो जानते ही हैं कि "मदिरा-पान" करना ब्रह्महत्याके समान दोष है। और इसके तो दिन-रात मदिराका ही व्यापार है। इसने बड़ा भारी मदिराका प्रचार किया है, मदिराके प्रचारसे लाखों मनुष्योंका धर्म भ्रष्ट कर दिया है। यह "महातामिस्र" नामक नरकमें गिरानेके लायक है।

कायस्थने कहा—नहीं, इसे वैकुण्ठमें भेजो।

चित्रगुप्तने कहा—महाराज ! यह भी वैकुण्ठमें जायगा ?

कायस्थने कहा—कोई भी आये, उसे वैकुण्ठमें भेजा जाय। इसके बाद कसाई आया।

कायस्थने कहा—यह कौन है ?

चित्रगुप्त बोले—महाराज ! इसने "बूचड़खाना" खोल रखा है, रोज एक हजार गौ काटनेका इसका नियम है। इसने अपने जीवनमें लाखों-करोड़ों गायें काट डाली हैं। महाराज ! यह तो "महारौरव" नरकमें गिरानेके लायक है, फिर आपकी मर्जी है।

कायस्थने कहा—इसको भी वैकुण्ठमें भेजो।

चित्रगुप्तने कहा—महाराज ! आप थोड़ा भी विचार नहीं करते।

कायस्थ बोला—इसमें विचार करनेकी तुम्हें कोई जरूरत नहीं है, अब पूछना ही मत, जो आये उसीको वैकुण्ठमें भेजो। लाइन लगा दो।

फिर वेश्या आयी।

चित्रगुप्तने कहा—महाराज ! यह वेश्या है, लोगोंका बहुत धर्म भ्रष्ट करती है।

कायस्थ बोला—तू बोल ही मत—जाने दो वैकुण्ठमें।

भगवान्‌ने देखा—वैकुण्ठमें आनेवालोंकी कतार लगी है और लोग आ रहे हैं। भगवान् मनमें सोचने लगे क्या बात है ये सभी वैकुण्ठमें चले आ रहे हैं, कहीं ऐसी बात तो नहीं कि "राजा कीर्तिमान्"के समान भक्तिका बहुत प्रचार हो गया ? फिर ध्यान लगाया कि नहीं, भक्तिका तो ऐसा प्रचार नहीं है जैसा था वैसा ही है। फिर जब यमलोकके विषयमें विचार किया तो देखा—यह अंधेर तो यहाँ है, यहाँ कोई कायस्थ आकर बैठ गया है, जो सबको वैकुण्ठ भेज रहा है। दौड़कर भगवान् यमराजके पास आये। भगवान्‌को आया देख सब खड़े हो गये, कायस्थ भी खड़ा हो गया। तख्तेपर भगवान्‌को बैठाकर सब नीचे बैठ गये।

भगवान्‌ने पूछा—धर्मराज ! तेरे यहाँ यह अंधेर क्यों ?

धर्मराज बोले—महाराज ! आपने जबसे यह नया गुमाश्ता भेजा है, तबसे यह अंधेर है। पहलेके सब बही-खाते, रजिस्टर देख लें—बिलकुल अंधेर नहीं है।

भगवान्‌ने पूछा—नया गुमाश्ता कहाँ है ?

यमराजने कहा—सामने बैठा है न यह !

भगवान्‌ने पूछा—तू कहाँसे आया ? कैसे आया ?

कायस्थ बोला—महाराज ! कैसे और क्यों पूछ रहे हैं ? आपने ही तो मुझे भेजा है।

भगवान्‌ने यमराजसे पूछा—यह मेरा भेजा हुआ है, यह तुमने कैसे विश्वास कर लिया ?

यमराजने कहा—यह आपका पत्र है, देख लें। भगवान्‌ने पत्र देखा तो ठीक मिल गया।

भगवान्‌ने कायस्थसे पूछा—यह पत्र किसका लिखा हुआ है ?

कायस्थने कहा—महाराज ! आपका लिखा हुआ है।

भगवान्‌ने कहा—मेरी तो तुमसे भेंट ही नहीं हुई, पत्र कैसे लिखा गया ?

कायस्थ बोला—महाराज ! आप तो सबके हृदयमें हैं। गीतामें आप ही कहते हैं—

सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टो मत्तः स्मृतिर्ज्ञानमपोहनं च।
वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम्॥

(१५।१५)

'मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ। मुझसे ही स्मृति और मुझसे ही ज्ञान होता है और अपोहन (संशय, विपर्यय आदि दोषोंका नाश) भी होता है। सम्पूर्ण वेदोंके द्वारा मैं ही जाननेयोग्य हूँ। वेदोंके तत्त्वका निर्णय करनेवाला और वेदोंको जाननेवाला भी मैं ही हूँ।'

मेरे दिलमें जब "ज्ञान" हुआ और स्मृति तथा विचार हुए, तभी तो मैंने यह पत्र लिखा। यह आपकी ही तो प्रेरणा है और आप पूछते हैं किसकी प्रेरणासे ? भगवान् बोले—यह बात ठीक है, परंतु तुमने यह क्या काम किया ? जो आये उसीको वैकुण्ठधाममें भेजकर तुमने बड़ा अन्याय किया।

कायस्थ बोला—महाराज ! यह बात तो मैंने पहले ही सोच ली थी कि यह कुर्सी, यह पदवी मुझे सदाके लिये तो मिलनेकी है नहीं। इसलिये जितना समय मिला है उतनेमें जो कुछ करना है वह कर लूँ। मैंने तो यह "नियम" ही बना लिया है कि मुझे किसीको नरकमें नहीं भेजना है, सबको वैकुण्ठमें भेजना है।

भगवान् बोले—अनुचित करनेवालोंको भी वैकुण्ठमें भेज दिया, यह अन्याय किया।

कायस्थ बोला—महाराज ! माना मैंने अन्याय किया ? मैंने यदि अनुचित किया हो तो उनको वापस भेज दें, किंतु ध्यान दें, वापस भेजनेपर गीताजीके कई श्लोक उठाने पड़ेंगे।

भगवान्ने कहा—क्यों ?

कायस्थ बोला—आपने कहा है कि मेरे परमधामको प्राप्त होकर फिर कोई वापस नहीं आता, क्योंकि मेरे परमधामको अव्यक्त, अक्षर और परमगति कहा गया है—

अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम्।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता ८। २१)

आपके परमधामको जाकर कोई वापस लौटे तो आपको गीताके इस श्लोकको निकाल देना पड़ेगा। भगवान् बोले—अरे यह तो बड़ा चालाक आ गया।

भगवान्ने पूछा—तू कौन है ?

वह बोला—कायस्थ।

भगवान्ने कहा—तुम कायस्थ हो इसीलिये तुम्हारी ऐसी बुद्धि है, नहीं तो इतनी चालाकी कहाँसे आवे। अच्छा, अब जो हो गया सो तो हो गया। धर्मराज ! हम अब जाते हैं, तुम्हें अपना काम ठीक-ठाकसे करना चाहिये।

यमराजने कहा—ठीक है, महाराज ! इसके बाद भगवान् चलनेकी तैयारी करने लगे तब कायस्थने भी उनके साथ जानेकी तैयारी कर ली।

भगवान्ने पूछा—तू कहाँ जाता है ?

वह बोला—महाराज ! जहाँ आप जाते हैं, वहीं मैं जा रहा हूँ।

भगवान्ने कहा—क्यों ?

कायस्थ बोला—आपने ही गीतामें अर्जुनसे कहा है कि हे अर्जुन !

ब्रह्मलोकतक सभी लोक पुनरावर्ती हैं, परंतु हे कौन्तेय ! मुझे प्राप्त होनेपर पुनर्जन्म नहीं होता।

आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन।
मामुपेत्य तु कौन्तेय पुनर्जन्म न विद्यते॥

(८।१६)

महाराज ! ब्रह्मलोकतक तो गया हुआ प्राणी वापस लौटता है ? यह तो यमराजका लोक है, यहाँसे तो वापस लौटना ही पड़ता है। लेकिन अब तो मैं आपको प्राप्त हो गया हूँ। वापस कैसे लौटूँगा ? आपको पाकर फिर मैं वापस नहीं लौटता। यदि लौटायेंगे तो गीताजीके श्लोकमें दोष आ जायगा।

भगवान्‌ने कहा—अच्छा भाई, चल। जब भगवान् जाने लगे तब यमराजसे फिर पूछा कि यमराज ! यह प्राणी आया कैसे ? यह तो बता ? यमराजने सारी कथा कह सुनायी।

यमराजने कहा—महाराज ! एक दिनकी बात है, यह जो हाथी बैठा है न, इससे मैं हँसी-दिल्लगी करने लग गया कि तू मनुष्यके वशमें कैसे हो गया ? तेरा शरीर तो इतना विशाल पहाड़के समान है। इसने कहा कि महाराज ! मनुष्यके वशमें तो भगवान् भी हो सकते हैं और आप भी हो सकते हैं। मैंने कहा कि मेरे यहाँ तो मनुष्य रोज ही आते हैं। इसपर इसने कहा कि हाँ महाराज ! आते तो हैं पर मरकर आते हैं तो मैंने दिल्लगीमें कह दिया कि अच्छा एक जिंदे आदमीको ले आओ। इसके बाद मैंने आदमी लानेके लिये दूतोंसे कहा, हो सकता है इसे ही लिवा लाये होंगे। इसपर भगवान्‌ने दूतोंको बुलाया और पूछा—दूतो ! क्या इसे तुम्हीं सब लाये थे ?

वे बोले—हाँ महाराज ! हमलोग ही लाये थे। इसपर भगवान्‌के सामने ही यमराजने दूतोंसे कहा—तुमलोगोंने आकर हमसे कहा क्यों नहीं कि इसे लाये हैं।

दूत बोले—महाराज ! हम क्या कहें, यह आया और आपको कोई

पत्र सौंपा और आप हाथ जोड़कर खड़े हो गये, गद्दी दे दी, पदवी दे दी हम सबने देखा और सोचा कि हो सकता है कि यह जान-पहचानका हो। तब बतावें कैसे ? इसके बाद हाथीने कहा—क्यों महाराज ! मैंने जो कहा था कि मनुष्यके वशमें तो आप भी हो सकते हैं और भगवान् भी हो सकते हैं, आपलोग वशमें हो गये कि नहीं ? भगवान् भी हो गये, आप भी हो गये। भगवान् और यमराज दोनोंने कहा—ठीक है। इसके बाद भगवान् और वह कायस्थ जब जाने लगे तब कायस्थने कहा कि महाराज ! देखिये, यह हाथी जो सूँड़ उठाये बैठा है, इसको भी साथमें ले लें। इन यमराज महाराजको उनकी पदवी दे दें, मुझे कोई आपत्ति नहीं है। यमराज-जैसी पदवी हमें नहीं चाहिये। भगवान् बोले—क्यों ?

कायस्थने कहा—इसने भी तो आपके दर्शन कर लिये। यह बेचारा आपका दर्शन करके भी यमलोकमें ही पड़ा रहेगा ?

भगवान्ने कहा—इसको भी ले लो। इसके बाद भगवान्ने उन लोगोंसे कह दिया कि तुमलोग पहले जैसे काम करते थे, वैसे ही काम करो, कानूनके अनुसार न्याय करो और जो हो गया, सो हो गया।

अब यदि कोई पूछे कि बनियेकी बुद्धि कैसी होती है ? बनियेकी भी बुद्धि अच्छी होती है। अपने ठहरे बनिये, अपनेको भी कोई पदवी मिल जाय, भूले-भटके भगवान् दे दें तो अपनेको भी वही कायस्थवाली नीति बर्तनी चाहिये। उससे कम क्यों रहें।

किसीने कहा कि मिली हुई तो है। अभी मिली हुई तो नहीं है, पर भगवान्की कृपा हो तो मिल भी सकती है; क्योंकि भगवान् अपनी कृपासे मच्छरको भी ब्रह्मा बना सकते हैं और ब्रह्माको भी मच्छरसे हीन बना सकते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं—

मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन।

भगवान्का ऐसा प्रभाव है। वे अपने प्रभावसे जो मर्जी आये सो बना दें। अपनी तो किसीकी ऐसी सामर्थ्य है नहीं। न कोई करामात है, न कोई

प्रभाव है—कुछ भी नहीं और भगवान् चाहें तो चाहे जिसको जो बना दें।

ऐसा बननेके लिये कौन-सा रास्ता अपनाया जाय। रास्ता अपनानेके लिये भी एक दृष्टान्त है। भगवान्‌का एक अनन्य भक्त था, वह तन, मन, धन, जन सबसे भक्ति करता था और सर्वस्व भगवान्‌के समर्पण करता था। समर्पण करके वह जो काम करता सब भगवान्‌का ही समझकर करता, क्योंकि भगवान्‌का काम समझकर करनेसे हर समय प्रसन्नता रहती है और थकावट नहीं आती। हँसता-हँसता, नाचता-नाचता, वह बड़े विनोदसे, आनन्दसे चौबीसों घंटे भगवान्‌का काम करता रहता।

चौबीसों घंटे काम कैसे करता था, सोता था कि नहीं ?

अरे भाई ! जैसे दिनमें करता वैसे ही स्वप्नमें भी अपनेको काम करता देखता। इसलिये उसके चौबीसों घंटे काम चलता रहता। ऐसा था वह भक्त, इसलिये भगवान्‌ने साक्षात् प्रकट होकर उसे दर्शन दिया और दर्शन देकर बोले कि तेरी जो इच्छा हो माँग।

भक्तने कहा—महाराज ! आपके दर्शन होनेके बाद इच्छा बाकी रहती है क्या ? और आपसे बढ़कर कोई चीज है क्या, जो आपको छोड़कर दूसरी चीज मागूँ।

भगवान् बोले—तू जैसा कहता है सब ठीक है, परंतु मेरे संतोषके लिये कुछ भी माँग ले और माँग वही जो तुम्हें जँचे।

भक्तने कहा—ठीक है महाराज ! आपने मेरे ऊपर ही भार दे दिया कि "तेरे जो जँचे वही माँग"। मैं तो यही माँगता हूँ कि "सबका उद्धार कर दें।"

भगवान् बोले—अरे सबका उद्धार कर दूँ तो इन सबका जो पाप है वह कौन भोगेगा ? अपने पुण्यका तो त्याग भी किया जा सकता है कि मैंने जो कुछ भले कर्म किये हैं वे सब "**श्रीकृष्णार्पणमस्तु**" —सब भगवान्‌के अर्पण हैं। जितने अच्छे कर्म हैं, उनको यदि आज भी हम भगवान्‌के समर्पण कर दें तो "खाता" चुकता हो जाय। परंतु जो

"पापकर्म" हैं वे या तो "प्रायश्चित्त" से नष्ट होते हैं या "भोग" से अथवा "साधन" करनेसे। अन्यथा इनके "पाप" रहते हुए इनकी मुक्ति कैसे होगी ? इनके पाप कौन भोगेगा ?

भक्तने कहा—अच्छा महाराज ! इन सबका पाप मैं भोग लूँगा। दुनियामें जितने प्राणी हैं, उन सबको तो आप मुक्त कर दें और उनके जितने पाप हैं उन्हें मेरे जिम्मे लगा दें। आप भुगतवाइये और मैं भोगूँ। जिस दिन ये भुगतते-भुगतते समाप्त हो जायँगे, तब अपने-आप "खाता" चुकता हो जायगा।

भगवान् बोले—भाई ! तू तो मेरा "भक्त" है। तुम्हें क्या वरदानमें पापोंका दण्ड भुगताऊँ ?

भक्तने कहा—यदि ऐसी बात है तो आप बड़े दयालु हैं, दयाके समुद्र हैं, परम दयालु हैं। सबपर दया करके सबको माफ कर दीजिये।

भगवान् बोले—यह बात तो असम्भव है।

भक्तने कहा—असम्भव तो कुछ नहीं है। यदि आप कहते हैं कि असम्भव है तो आप तो असम्भवको भी सम्भव कर सकते हैं, क्योंकि आप परमेश्वर हैं, परमात्मा हैं। परमात्मा तो ऐसे सामर्थ्यवान् हैं कि असम्भवको भी सम्भव कर दें।

भगवान् बोले—भाई ! इस विषयमें बातचीत करनेमें तो मैं तुमसे हार गया।

भक्तने कहा—महाराज ! हारनेसे क्या हुआ ? यदि आपकी सामर्थ्य नहीं है तो फिर आपको मुझसे यह कहना उचित था कि भाई ! स्त्री माँग लो, पुत्र माँग लो, धन माँग लो, मुक्ति माँग लो। बस ! यह कहना उचित नहीं था कि तेरी जो इच्छा हो, वह माँग लो। यदि सामर्थ्य नहीं है तो यह बात क्यों कही कि तेरी जो मर्जी आये वही माँग ? और सामर्थ्य है तो मैं जो मागूँ वह दें।

भगवान् बोले—अच्छा भैया ! तुम जीते और हम हारे।

भक्तने कहा—महाराज ! इस जीतसे क्या फायदा ? मिली तो एक

छदाम भी नहीं। मेरी हार भले ही हो पर सबका कल्याण होना चाहिये। ऐसी जीत किसी कामकी नहीं, जिससे एकका भी कल्याण न हो।

भगवान् बोले—अच्छा, मनुष्यका मेरा दर्शन, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन, मेरे नामका जप, ध्यान और किसी भी प्रकारसे मेरा संसर्ग हो जानेपर कल्याण हो जाता है वही शक्ति, वही सामर्थ्य मैं तुझे दे रहा हूँ। तेरे भी दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन, नामोच्चारणसे भी उस जीवका "कल्याण" हो जाय। तेरी जैसी इच्छा हो, जितनोंका उद्धार करना चाहे, कर।

इसके बाद भक्त विचार करने लगा कि भाई ! काम तो अपना बना नहीं, पर भगवान् जो दें वही सही, मालिककी मर्जी। यदि मालिककी इच्छा सबका उद्धार करनेकी नहीं है तो जो दें वही ले लूँ। अतः भगवान्ने जो दिया वही उसने अपने लिये ले लिया। यह एक दृष्टान्त है।

पहले बात यह कही गयी थी कि कायस्थके जैसा अधिकार किसको मिले ? कायस्थको तो मिला तीन ही दिन। उससे ज्यादा मिला राजा कीर्तिमान्को और उससे भी और ज्यादाकी जगह खाली है—यानी सबका उद्धार अभीतक नहीं हुआ, यदि उस खाली जगहपर कोई आ जाता, तो हम-सबका उद्धार हो जाता। उस प्रकारका अधिकार किसको मिले ? मैंने जो इस भक्तकी कथा कही—इस भक्त-जैसा जिसके हृदयका भाव हो, उसको मिले। जिसमें यह भाव हो कि दूसरोंके पापोंका फल, दुःखका भी दण्ड मुझे भुगता दो, इन सबका उद्धार कर दो—ऐसा दिल हो, इतनी उदारता हो, इस प्रकारका निष्कामभाव हो, ऐसा हृदयमें त्याग हो उनको ऐसा अधिकार मिलता है। यह जो उच्च कोटिकी दया है, सुहृद्भाव है—इन्हें भगवान्से भी बढ़कर हम कहें तो कोई आपत्ति नहीं। क्योंकि भक्तोंकी महिमा इसी प्रकार गायी गयी है—

मोरें मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥

(रा० च० मा० ७। १२०। १६)

भक्तोंकी यही महिमा है। जो दूसरोंके कल्याणके लिये और उनके पाप भोगनेके लिये तैयार हैं, एक मनुष्यका ही नहीं, सब दुनियाका। किंतु भगवान् भी अपने भक्तको कैसे भुगतायें, वह तो उसकी बात रखनी थी। भगवान्‌को भुगताना थोड़े ही था। भगवान् तो परीक्षा लेते हैं, भगवान् तो कसौटीपर चढ़ाकर कसनेके लिये ऐसा करते हैं।

अब शुरूमें जो भगवान्‌के प्रेमकी बात उठायी थी, वह तो रह ही गयी। है तो ये भी सब भगवान्‌के प्रेमके ही अन्तर्गत। अब खास प्रेमकी बात बतलायी जाती है—गोपियोंमें सबसे बढ़कर राधिकाजी हैं। उनका जो भाव था, उसका ज्ञान वर्तमानके मनुष्योंमें देखनेमें नहीं आता। ऊपरका दिखानेका तो बहुत आता है, किंतु राधाजीका जो असली भाव है, वह छिपा हुआ है।

श्रीराधा-भाव जैसा आविष्कार अभीतक नहीं हुआ, आजसे लगभग पाँच हजार वर्ष पहले वक्तमें जब भगवान् श्रीकृष्णजीने अवतार लिया था, गोपियाँ थीं, राधिकाजी थीं उस समय वह प्रेमका भाव एकदम प्रत्यक्ष प्रेम मूर्तिमान् होकर नाच रहा था।

यदि कहें कि उस समय मूर्तिमान् होकर नाच रहा था, तो इस समय क्यों नहीं नाच रहा है ?

उस समय साक्षात् भगवान्‌ने अवतार लिया था। यदि इस समय भी भगवान् आयें तो शायद वैसा हो जाय। दूसरी बात यह है कि उस समय केवल भगवान्‌का ही अवतार नहीं था, भक्तोंका भी अवतार था। गोपियाँ कौन थीं ? किसी-किसीका कहना है कि वालखिल्य आदि मुनि गोपियोंके रूपमें प्रकट हुए। किसीके मतमें वेदकी श्रुतियाँ थीं। कोई कहते हैं कि भगवान्‌के परमधाममें निवास करनेवाले भक्त गोपियोंके रूपमें प्रकट हुए। इसलिये प्रेम मूर्तिमान् होकर नाचा करता था। प्रेम, प्रेमास्पद और प्रेमी—ये तीनों एक ही चीज हैं। एक प्रेमने ही तीन रूप धारण किये हैं।

भगवान्‌की दृष्टिमें गोपियाँ प्रेमास्पद और भगवान् प्रेमी तथा गोपियोंकी दृष्टिमें भगवान् प्रेमास्पद और गोपियाँ प्रेमी तथा उनका जो सम्बन्ध है वह प्रेमका सम्बन्ध है। प्रेम तो बीचमें सम्बन्ध करानेवाला है। मानो प्रेम वहाँ भावके रूपमें है। ऐसी वे तीन चीजें वहाँ थीं। इस बातपर आपको ध्यान देना चाहिये।

उस समय भगवान् स्वयं प्रकट हुए थे और उनके 'परिकर' भी साथ आये थे। यह कथा सुनी जाती है, शायद कोई पुराणमें हो, अभी देखी नहीं है सुनी हुई है।

एक समयकी बात है। जब नारद मुनिपर कामदेवने प्रभाव डाला तो कामदेवसे नारदजीने कहा—अरे कामदेव ! तैंने मुझे भी नहीं छोड़ा ? एक घर तो छोड़ना चाहिये। अपने यहाँ कहावत है—***"एक घर तो डाकण भी छोड़े"*** (एक घर तो 'डाइन' भी छोड़ देती है)।

उसने कहा—मैं किसीको भी नहीं छोड़ता।

नारदजीने कहा—तुमको आजतक जीतनेवाला कोई नहीं मिला क्या ?

वह बोला—आजतक मुझे जीतनेवाला कोई नहीं मिला। हमने तो शिवजीको भी पछाड़ दिया, तुम क्या चीज हो, हम भगवान्‌को भी पछाड़ सकते हैं। कामदेवके इस अहंकारकी बात सुनकर नारदजीको बर्दाश्त नहीं हुआ। नारदजी भगवान् विष्णुके पास गये और बोले कि प्रभो ! आप कहते हैं न कि "मैं किसीके गर्वको नहीं रहने देता"। इसे सुनकर भगवान् बोले—क्या बात है ?

नारदजी बोले—इस समय कामदेवको बड़ा अभिमान हो गया है। वह कहता है कि मुझे जीतनेवाला दुनियामें कोई नहीं है। क्योंकि मैंने शिवजीको पछाड़ दिया और भगवान्‌को भी पछाड़ सकता हूँ।

भगवान् बोले—अच्छा नारद ! तुम जाओ उससे कह दो कि

विष्णुभगवान्ने कहा है—"मैं तुम्हें जीतूँगा"। कौन-सी लड़ाई करना चाहते हो—मैदानकी या किलेकी ? किलेकी लड़ाईका यह मतलब है कि जैसे कोई वनमें, गुफामें जाकर आजन्म ब्रह्मचर्यका पालन करे तो वह है किलेकी लड़ाई और मैदानकी लड़ाई यह है कि स्त्रियोंके बीचमें रहकर कामदेवको जीत ले—यह है मैदानकी लड़ाई। नारदने कहा—ठीक है। नारदजीने यह बात जाकर कामदेवसे कह दी। नारदकी बात सुनकर कामदेवने कहा— मुझे कोई किलेकी लड़ाईमें भी नहीं जीत सकता, फिर मैदानमें तो जीत ही कौन सकता है। कामदेवकी वह बात नारदजीने जाकर भगवान्से कही।

भगवान्ने कहा—नारद ! जाओ, तुम उससे कह दो कि कृष्णावतारमें मैं तुमसे मैदानकी लड़ाई करूँगा और तुम्हें जीतूँगा। तुम सावधान हो जाओ। भगवान्ने यह बात नारदसे कहलवाकर कामदेवको सावधान कर दिया, फिर भगवान्ने अवतार लिया। अवतार लेकर "सोलह हजार एक सौ आठ" रानियाँ ब्याहीं। कहा जाता है कि जिनसे लाखों पुत्र हुए और गोपियोंके साथ बहुत ही प्रेम किया। इसमें स्वकीय और परकीय दोनों बातें दिखलायी हैं, जैसे—रुक्मिणी आदि हैं, उनका माधुर्यप्रेम स्वकीय था। और गोपियोंका माधुर्यप्रेम परकीय था—वे दूसरोंकी स्त्रियाँ थीं और उनका भगवान्में सखापनका प्रेम था, जैसे पुरुष-पुरुषका हो ऐसा प्रेम था और उन अपनी धर्मपत्नियोंके साथमें सहवास था। उनमें प्रधान रुक्मिणी थीं और इनमें प्रधान "श्रीराधिकाजी" थीं। इनमें प्रधान आठ सखियाँ थीं और उनमें प्रधान आठ पटरानियाँ थीं। और बहुत-हजारों गोपियाँ थीं और हजारों रानियाँ थीं। उन दूसरे पुरुषोंकी स्त्रियोंके साथ रहकर यह पवित्रता सिद्ध करके दिखला दी। कामदेवके मदको एकदम चूर कर दिया। भगवान्में तो कामदेव प्रकट ही कैसे हो, उन गोपियोंमें भी कामदेवका विनाश कर दिया और उधर अपनी जो स्त्रियाँ

हैं, उनके साथ भी कामसे रहित होकर जैसे ज्ञानी महात्मा राजा जनक आदि अपनी स्त्रियोंके साथ सहवास करके निर्लिप्त रहते थे, इस तरह रहे यह थी मैदानकी लड़ाई।

स्वयं भगवान् अपने परिकरोंको साथ लेकर आये। क्योंकि कामदेवका मद चूर करना था। कामदेवके मदको चूर करनेके उद्देश्यसे भगवान्ने अवतार लिया और वह प्रेमावतार हुआ—प्रेमकी मूर्ति, सभी प्रेमकी मूर्ति। भगवान्का तो यह ध्येय था कि जो कुछ भी लीला, चेष्टा करनी है सब नीतियुक्त, धर्मयुक्त, शास्त्रयुक्त, शुद्ध और पवित्र करनी है और प्रेम खूब बढ़ाना है।

प्रेम बढ़ानेके लिये ही भगवान्ने ब्रह्माजीके ऊपर पर्दा डालकर उनकी बुद्धिको मोहित कर दिया और ब्रह्माजी ग्वालबाल और बछड़ोंको चुराकर ले गये। फिर भगवान्ने ही अनेक रूप धारण किये। अनेक रूप धारण करके भगवान्ने उस समय ऐसा प्रेमका प्रवाह बहाया कि पशुओंमें भी प्रेमका प्रवाह बह चला। मनुष्योंमें ही नहीं वृक्षोंमें भी। वृक्षोंमें जैसे बिना ऋतुके फल लगना और भगवान्को देखकर रस बहाना। यहाँतक प्रेम दिखाया कि गायें भी बछड़ा बने हुए भगवान्को दूध पिलाने लगीं। इसमें कोई आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि भगवान् प्रेमकी मूर्ति हैं, भगवान्के कारण गौओंमें यदि प्रेमका प्रादुर्भाव हो जाय तो इसमें कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं, किंतु जो दो वर्षका बछड़ा है, चार वर्षका बछड़ा है, मतलब एक वर्षका, दो वर्षका—जिन्हें गौओंने दूध पिलाना छोड़ दिया है उनसे भी गौएँ प्रेम कर रही हैं। यह बात देखकर बलदेवजीको बड़ा आश्चर्य हुआ और बोले—यह तो अप्राकृत चीज है—प्रकृतिसे बाहरकी चीज है, न्यायसे तो ऐसा होना नहीं चाहिये, स्वभावसे यह बात नहीं होनी चाहिये। बात क्या है ? विचार करने लगे। गोप-ग्वालोंको देखते हैं—उनका लड़का यदि कोई कसूर कर देता और उसे मारने-पीटने जाता, किन्तु पास जानेपर लड़का हँस देता तो

वह भी हँस देता, उनको भी हँसी आ जाती, सारा क्रोध दूर भाग जाता और उसे लेकर अपने हृदयसे लगाने लग जाते, वहाँ क्रोध-भाव बदलकर वात्सल्य-भाव हो जाता। इस प्रकारकी बात देखकर बलदेवजीने जब ध्यान लगाकर देखा तो जितने ग्वाल-बाल, बछड़े हैं—सब कृष्ण-ही-कृष्ण दिखायी दिये। तब भगवान्‌से पूछा कि क्या बात है ? भगवान्‌ने सब बात बतायी कि ब्रह्माजी इस प्रकारसे ग्वालबालोंको और बछड़ोंको चुराकर ले गये और मैं ही अनेक रूप धारण करके लीला कर रहा हूँ। तब बात समझमें आयी।

भगवान्‌ने अनेक रूप धारण करके ऐसी लीला की कि वहाँके गोपोंमें, गोपियोंमें, गौओंमें, बछड़ोंमें—स्वयं उस रूपमें बन करके सबमें प्रेमकी जागृति कर दी। ग्वालोंके साथ भी शुद्ध प्रेम, गोपियोंके साथ भी शुद्ध प्रेम, गोपोंकी माताओंके साथ भी शुद्ध प्रेम और गौओंके साथ भी शुद्ध प्रेम। किसीके साथ वात्सल्यभावका प्रेम और किसीके साथ सख्यभावका प्रेम। गोपियोंके साथ, गोपोंके साथ तो सख्यभावका प्रेम और गोपोंकी माताओं तथा बछड़ोंकी माताओंके साथ वात्सल्यभावका प्रेम। उस समय एक प्रेमका प्रवाह बह रहा था। प्रेमका ऐसा प्रवाह बहा कि मानो प्रेमकी बाढ़ आ गयी। उस समय भगवान्‌की सभी चेष्टाएँ उन प्रेमियोंको खुश करनेके लिये, आह्लादित करनेके लिये, मुग्ध करनेके लिये, उत्तरोत्तर प्रेम बढ़ानेके लिये और उन सब गोपियोंका भी एक ही ध्येय—भगवान्‌को खुश करनेके लिये और भगवान्‌में अपना प्रेम बढ़ानेके लिये था। इस प्रकार प्रेम साक्षात् मूर्तिमान् होकर नृत्य करता था। दोनोंका एक ही लक्ष्य। भगवान्‌के लिये गोपियाँ प्रेमास्पद और गोपियोंके लिये भगवान् प्रेमास्पद। वास्तवमें तीनों-प्रेमास्पद, प्रेमी और प्रेम धातुसे एक ही हैं। जिस समय भगवान्‌ने श्रीकृष्णरूपमें अवतार लिया था, वह प्रेमावतार था। उस समय सब गोपियोंसे बढ़ करके राधिकाजी थीं। रुक्मिणीजीके समान ही नहीं, बल्कि

रुक्मिणीजीसे भी बढ़कर राधिकाजी थीं। रुक्मिणीजी जो हैं, वे ऐश्वर्य-शक्तिकी मालिकिन थीं—सबको ऐश्वर्य दिया करती थीं और राधिकाजी प्रेमकी मालिकिन थीं जो सबको प्रेम प्रदान करती थीं। श्रीराधिकाजी प्रेमका ही अवतार थीं—प्रेमने ही "श्रीराधिकाजी" का रूप धारण किया और प्रेमने ही "श्रीकृष्णजी" का रूप धारण किया। यों कह दो अथवा यों कह दो कि साक्षात् सच्चिदानन्दघन पूर्णब्रह्म परमात्मा ही साक्षात् श्रीकृष्ण हैं और राधिकाजी उनकी आह्लादिनी शक्ति थीं।

एक ऐश्वर्य शक्ति होती है और एक आह्लादिनी शक्ति, जो भगवान् सारे संसारको आह्लादित करते रहते हैं, मुग्ध करते रहते हैं, आनन्द और प्रेमका दान करते रहते हैं। उन (दुनियाको आनन्द देनेवालेको आनन्द और प्रेम प्रदान करनेवाले) को प्रेम प्रदान करनेवाली शक्तिका नाम है "आह्लादिनी शक्ति"। इस प्रकार उन राधाजीका अवतार आह्लादिनी शक्तिका अवतार था। इसलिये उस वक्त प्रेम मूर्तिमान् होकर नाचा करता था। इस जमानेमें तो उसकी छाया भी नहीं। फिर भी उस बातको लक्ष्य करके आपलोगोंके सम्मुख जो बात कही जाती है, वह बात पूरी नहीं कही जाती।

असली बात तो हमारी बुद्धिमें समाती ही नहीं, क्योंकि हमारी बुद्धिमें वह ताकत नहीं। जैसे तुलसीदासजीने कहा कि भरत और रामके मिलनेकी बात कविकी वाणी गा नहीं सकती, जैसे गाडरकी ताँत सुराग नहीं गा सकती। इसी प्रकार वाणीकी पहुँच वहाँ नहीं है जो उसकी छायाको भी छू सके। बात तो सच्ची है। प्रेम चीज जिसे विशुद्ध प्रेम, पूर्ण प्रेम या अनन्य प्रेम कहते हैं यह तो एक प्रकारसे शब्दोंका उच्चारण किया जाता है, किंतु बुद्धि उसे समझ नहीं सकती। परमात्माका जो प्रेमस्वरूप है या दोनोंका यह अवतार—भगवान् (कृष्णजी) साक्षात् सच्चिदानन्दघन ब्रह्म और राधिकाजी उनकी आह्लादिनी शक्ति, उनके प्रेमके विषयको बुद्धि ग्रहण करनेमें किस प्रकार असमर्थ है जैसे कि घड़ेमें विशाल

समुद्र समा नहीं सकता—घड़ेमें यदि समुद्र भरना चाहें तो मूर्खता है, क्योंकि वह समा ही नहीं सकता। अपनी बुद्धि तो घड़ेके समान भी नहीं है। बुद्धिमें जो बात आती है, वह स्पष्ट नहीं हो पाती। उस प्रेमका आविष्कार करना तो बहुत दूर है—उस प्रेमको किसी उदाहरणसे गढ़कर बतलाया नहीं जा सकता, मनकी भी शक्ति गढ़नेकी नहीं। कोई भी दृष्टान्त या उदाहरण गढ़ कर बतलानेकी मनकी सामर्थ्य नहीं। बुद्धिमें समझनेकी जो बात है, उसका मन कोई दृष्टान्त या उदाहरणका रूपक नहीं बाँध सकता। उसके जितने नजदीक पहुँचकर जितना भी उसका रूपक बाँध दे। पर एक क्षणमें, समझो कि एक सेकेंडमें जो उस रूपकका चित्र आता है, उसका वर्णन किया जाय तो घंटों ही लग जायँ। मनमें क्षणमात्रमें, आँख खोले इतनी देरमें वह चित्र आता है, परंतु उस चित्रको समझानेके लिये बहुत समय लग जाता है। वाणीकी इतनी शक्ति नहीं जितनी कि मनकी है। चित्र बनानेवालेको भगवान्‌का एक चित्र लेकर चरणोंसे मस्तकतक समझाया जाय कि चरण ऐसे हैं, हाथ ऐसे हैं, तो वह आँखोंके सामने क्षणमें—क्षणभरमें दीख रहा है, आँख खुले और मीचे—इतनी देरमें वह चित्र दीख रहा है, परंतु वाणीके द्वारा उसे समझाया जाय तो कितनी देर लगे। बहुत देर लगे। वह भी किसी एक कागजका चित्र। वह कैसे समझाये। यह तो अलौकिक है। प्रश्न होता है कि फिर इस विषयमें अपनेको क्या करना चाहिये ?

अपनेको तो यही करना चाहिये कि भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका जो स्वरूप है, अथवा जिसका जो इष्टदेव है, चाहे भगवान् शिव हों, चाहे भगवान् श्रीराम हों, चाहे भगवान् विष्णु हों—इस विषयमें कोई फर्क नहीं। इसलिये प्रकरणवश श्रीकृष्णजीकी बात कही। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजीका जो स्वरूप है, संसारमें जितने बढ़िया-से-बढ़िया श्रीकृष्णचन्द्रजीके चित्र मिलते हैं, उनमेंसे भी जो बढ़िया-से-बढ़िया अपनेको मिले, अपनी बुद्धि जहाँतक पहुँच सके, अपनी बुद्धिसे जो बढ़िया-से-बढ़िया चित्र लगे, वह लेकर उस चित्रके आधारपर भगवान्‌के स्वरूपको देखें। आधारपर कहनेका

मतलब उस चित्रको नहीं, उस चित्रके आधारपर भगवान् श्रीकृष्णजीके स्वरूपको देखें। क्योंकि वह चित्र तो जड है और भगवान् चेतन हैं। जैसे समझो कि मेरा यह शरीर और भीतरमें आत्मा है। ऐसे ही किसीने मेरा चित्र उतार लिया और वह सामने लाकर रखा। चित्रमें और मेरेमें अन्तर है, क्योंकि मैं तो बोलता हूँ, बात करता हूँ, चेतनतासे हिलता-डोलता हूँ, आँखके संकेतसे बतला सकता हूँ और वह मेरा चित्र कैसे बतला सकता है। उसमें तो कोई हाव-भाव आदि कुछ भी नहीं है। मेरा और उसका जो अन्तर है, इसी प्रकार भगवान्के चित्रमें और भगवान्में अन्तर इतना ही नहीं है, बल्कि बहुत ज्यादा है।

भगवान्में और भगवान्के चित्रमें अन्तर ज्यादा कैसे है? मान लो भगवान्का असली चित्र तो उतार लिया। उसमें आकृति आ गयी पर भगवान्के हाव-भाव, गुण आदि उस चित्रमें कैसे आयें, वे तो नहीं आ सकते। मेरा चित्र तो आप मेरे इस शरीरसे उतार सकते हैं, परंतु अपनेको जो भगवान्के चित्र मिलते हैं, वे कैमरेद्वारा भगवान्के श्रीविग्रहसे उतारे हुए नहीं हैं, कितना फर्क है। अब इस विषयमें अपनेको मददकी जरूरत पड़ी तब चित्रकी मदद ली और उस चित्रमें जो बात नहीं है, उसमें हाव-भाव, कटाक्ष और प्रेम, गुण आदिके लिये महात्माओंके वचन, शास्त्र अपने लिये आधार हैं। उनसे लेकर उस चित्रमें सजावें। ऐसा भगवान्का स्वरूप है—उसमें और भी विलक्षणता है। जैसे मेरा शरीर है और मेरे भीतर आत्मा है। मेरा शरीर तो चेतन नहीं है, पर मेरे भीतरकी आत्मा चेतन है। शरीर क्षेत्र है, यह क्षेत्रज्ञ है, किंतु भगवान्का तो शरीर भी चेतन है। वहाँ सब चेतन है। भगवान्का शरीर ही चेतन नहीं, उनके ऊपर जो आयुध या उनके ऊपर वस्त्र, आभूषण, माला आदि जो भी कुछ हैं, वे सब भी चेतन हैं। इसलिये उनमें बहुत अन्तर है। ये सारी बातें उसमें अपने मनसे मानें और मान करके ऐसा स्वरूप देखें, देखते ही रहें।

यदि कहो कि यह मान्यता तो आप कहते हैं, पर ऐसी मान्यताकी हम अपनेमें पूर्णता कैसे ले आयें ?

शुरूमें इसके लिये इस प्रकार होना चाहिये—जब अपने नेत्रोंसे चित्रको देखें तब उसमें यह ताकत नहीं रहे कि नेत्र वहाँसे हटा सकें। यदि भगवान् ही नेत्रोंसे ओझल हो जायँ अन्तर्धान हो जायँ तो उपाय क्या, परंतु अपनी यह सामर्थ्य नहीं रहे कि अपने नेत्रोंको हटा सकें। दूसरी बात यह कि पलक नहीं मार सकें—एकटक ही देखें। तीसरी बात, ऐसा विचार करें कि मानो आपसमें अपने दृष्टिसे भगवान्‌को देख रहे हैं, भगवान् अपनेको देख रहे हैं—परस्परमें जो दृष्टिपात है, उस दृष्टिपातमें जो आदान-प्रदान है, वह प्रेम ही है। प्रेमका तो कोई आकार नहीं होता, वह प्रेम तो प्रेम ही है। जब वह प्रेम नेत्रोंकी वृत्तिके द्वारा—अचल हो जाय, नेत्र भगवान्‌की तरफ और भगवान् उनकी तरफ। तब उस समय शरीरमें प्रसन्नता, हृदयमें प्रफुल्लता, नेत्रोंमें प्रसन्नता, रोमाञ्चके चिह्न एकदम होने लगते हैं। मानो भगवान् परमधामसे पधारे हैं। सबसे पहले शुरूमें जब आभास हो कि भगवान् आये, तब ऐसी भावना करे कि मानो भगवान्‌के चरणोंमें मैं साष्टांग प्रणाम कर रहा हूँ और भगवान् प्रतिक्रियामें मानो हमें उठाकर अपने हृदयसे लगा रहे हैं। जैसे भरतजी महाराज चित्रकूटमें गये, भगवान् रामके चरणोंमें गिर गये और उनको उठाकर भगवान् रामने अपने हृदयसे लगा लिया। इसी प्रकार हम श्रीकृष्णजीके चरणोंमें गिर गये और भगवान् श्रीकृष्णजीने उठाकर अपने हृदयसे हमें लगा लिया। हमने भगवान्‌के चरणस्पर्श किये और भगवान्‌ने हमारा आलिङ्गन किया। दोनों क्रियाओंमें ही भगवान्‌के दर्शनके बाद स्पर्श हुआ। स्पर्श होनेके बाद फिर आपसमें बातचीत की। बातचीतके समय उस आश्चर्यको देखकर कि भाई ! कहाँ तो मैं—कहाँ भगवान्—कितने आश्चर्यकी बात है और भगवान्‌की कृपाको, भगवान्‌के प्रेमको, दयाको—इनको देख-देखकर आश्चर्यके साथ-साथ प्रसन्नता, आनन्दमें मुग्ध हो जाय। थोड़ी देर तो आपसमें

बातचीतमें वाणीसे बोल नहीं सके। उसके बाद धैर्य धारण करके बातचीत करे। जैसे सुतीक्ष्णजीकी अवस्था हो गयी—सुतीक्ष्णजी भगवान्‌को देखकर मुग्ध होकर चरणोंमें गिर पड़े और थोड़ी देर बोल भी नहीं सके। फिर उसके बाद भगवान्‌की स्तुति की। इस प्रकारसे साधन-अवस्थामें भगवान्‌की स्तुति की और फिर भगवान्‌से वार्तालाप। जैसे हमलोग बातचीत करते हैं, ऐसे भगवान्‌से बातचीत। इस अवस्थामें भगवान्‌से स्वयं प्रश्न करे कि आपका दर्शन सुलभ कैसे है ? भगवान् कहते हैं कि प्रेमसे है। फिर पूछे प्रेम सुलभ कैसे है ? तो वे कह रहे हैं—श्रद्धासे है। इस प्रकार अपने मनमें जो आवे, वैसी ही बातचीत करे। उस वक्त जो स्फुरणा हो, जो बातचीतकी भावना हो—जैसे भगवान् अपने श्रीविग्रहसे उत्तर दे रहे हैं। भगवान्‌के ओंठ हिल रहे हैं, बोल रहे हैं, जवाब दे रहे हैं और हम उनको सुन रहे हैं। जो सुन रहे हैं, वह भी इस स्थूल शरीरसे नहीं सुन रहे हैं, बल्कि अपना भी शरीर मानसिक है और भगवान्‌का शरीर भी मानसिक है—दोनोंके जो दर्शन हैं, भाषण हैं, वार्तालाप हैं—दोनों ही मनसे ही हो रहे हैं। इस प्रकारसे जो दर्शन है, भाषण है, वार्तालाप है, उनका जो चिन्तन है—सभी अलौकिक है। और उनमें जो सुगन्ध आती है वह भी अलौकिक। उनमें जो गन्ध है, वह नासिकाके लिये अमृतके समान है। उनका जो दर्शन है, वह नेत्रोंके लिये अमृतके समान है। उनका जो स्पर्श है, वह हाथोंके लिये, अंगके लिये अमृतके समान है, उनकी जो वाणी है वह कानोंके लिये अमृतके समान है। इन्द्रियोंके लिये उनका सभी—दर्शन, स्पर्श, भाषण, वार्तालाप, सुगन्ध आदि अमृतके समान है। इस प्रकार अपने मानसिक दर्शन-ध्यान प्रतिदिन करें—दिनमें एक बार, दो बार, पाँच बार— जब अपने मनमें आवे तभी। इस प्रकार करते-करते पहले तो यह चीज होती है मानसिक, मनका संकल्प या उनको यों कहें कि अपनी भावना और भावना होते-होते वह भावना आगे जाकर दृढ़ हो जाय तो फिर भावना नहीं रहती—वह प्रत्यक्षकी तरह "अकल्पित बात" हो जाती है।

भगवान्‌की असीम दयाका फल

भगवान्‌की दयाके विषयमें एक कहानी सुनी जाती है। इस कहानीमें विशेष रहस्य है। कहानी इस प्रकार है—एक संन्यासी महात्मा थे, वे एक बार किसी गृहस्थके यहाँ भिक्षाके लिये गये। उसके दरवाजेपर आवाज दी—'नारायण हरि'। गृहस्थ घरके भीतर था। वह बाहर आया और हाथ जोड़कर उनके चरणोंमें गिर गया तथा रोने लगा। महात्माने पूछा—तुम क्यों रोते हो? गृहस्थ बोला—महाराज! मेरे समान संसारमें कोई दुःखी नहीं है, कोई दरिद्र नहीं है। मैं इतना गरीब और दुःखी हूँ कि मैं क्या कहूँ।

मेरे रोनेका कारण यह है कि आप हमारे घर आये और 'नारायण हरि' कहकर भिक्षाके लिये प्रेरणा दी किन्तु महाराज! मैं क्या कहूँ, मेरे घरवाले तीन दिनसे भूखे हैं, खानेके लिये घरमें अन्नका एक दाना भी नहीं है। शहरके लोगोंने बड़ी मदद की, उधार रुपया भी दिया। देनेवाले लोग कितना दें, तीन दिनसे हम सब भूखे हैं। हमारे समान कोई गरीब, अनाथ, दरिद्र, भूखा नहीं है। तब उस महात्माने कहा कि तुम्हारे समान संसारमें कोई धनी नहीं है, तुम चाहो तो सबको मालामाल कर सकते हो। रंकको भी धनी बना सकते हो, दरिद्रकी भी दरिद्रता मिटाकर उन्हें एकदम धनी बना सकते हो, ऐसी तुम्हारी सामर्थ्य है। उस गृहस्थने कहा—'महाराज! मेरी न कोई सामर्थ्य है, न कोई करामात। न मेरे पास रुपया है। आप कैसी बात कह रहे हैं। मेरी समझमें बात नहीं आती। आप कहते हैं—तुम्हारे समान कोई धनी नहीं है, महाराज! मैं समझता हूँ कि मेरे समान कोई दरिद्र नहीं है, कोई गरीब नहीं; कोई अनाथ नहीं है आप बिलकुल विपरीत बात कह रहे हैं। महात्माने कहा—देखो, तुम्हारे घरमें यह क्या है? गृहस्थ बोला—सिल-लोढ़ा है। महात्माने लोढ़ेको उठाया और बोले—'यह क्या है?' गृहस्थ

बोला—यह पत्थर है। महाराज बोले हम इसे पत्थर नहीं मानते। गृहस्थ बोला—आप मानें चाहे न मानें। आप कहें तो मैं हजारों आदमियोंसे कहलवा दूँ कि यह पत्थर है।

महात्मा बोले—हजार आदमियोंकी बात सुनानी है या मुझे जो प्रत्यक्ष दीख रहा है, उसे मानना है। गृहस्थने कहा—महाराज! आपको कुछ और दीखता है क्या? क्या पत्थर नहीं दीखता? महात्मा बोले—नहीं, मुझे तो कुछ और ही दीख रहा है। गृहस्थ बोला—महाराज! क्या करूँ। इसमें आपकी दृष्टिका दोष है। महात्मा बोले—हमारी दृष्टिका दोष नहीं है, तुमलोगोंकी दृष्टिका दोष है। तुमने कभी पारसका नाम सुना है। गृहस्थ बोला—सुना था और उसका प्रभाव भी सुना था। महात्मा बोले—क्या सुना था। गृहस्थ बोला—सुना था कि लोहेको पारस पत्थरसे छुआ दो तो लोहा सोना बन जाय। महात्मा बोले—यह वही चीज है। तुम्हारे घरमें कोई लोहेका बर्तन है? गृहस्थने कहा—हाँ महाराज—तवा है, चिमटा है, संडसी है, कड़छी है, कूँड़िया है। महाराज! मैं तो गृहस्थ आदमी हूँ। इस तरहके लोहेके बर्तन तो पड़े ही हैं। महात्मा बोले—अच्छा लाओ, लोहा।

गृहस्थ लोहेके सामान लाया। महात्माजी उन्हें छुआते गये और सोना बनाते गये। महात्मा बोले—अब बताओ यह पत्थर है या पारस? गृहस्थ बोला—महाराज! यह तो प्रत्यक्ष पारस है। महात्माजीने कहा—यदि तुम्हें कोई कहे कि यह पत्थर है तो मानोगे? गृहस्थ बोला—नहीं मानेंगे। महात्मा बोले—अब तू बतला कि तेरे समान संसारमें कोई धनी है क्या? गृहस्थ बोले—हाँ महाराज नहीं है। महात्माजीने कहा—तुम यदि चाहो तो हजारों आदमियोंको धनी बना सकते हो, लखपती बना सकते हो? यह पत्थर तुम्हारे घरमें ही पड़ा था या कहींसे आया? गृहस्थ बोले—महाराज! बाहरसे नहीं आया, यह तो हमारे घरमें ही था। हम जानते नहीं थे। इसलिये दुःखी हो रहे थे।'

यही बात भगवान्‌की दयाके विषयमें है। भगवान् एवं उनकी दया तो

पहलेसे ही है, जैसे उसके घरमें वह पत्थर पहलेसे ही था। किंतु हम भगवान्‌की दयाको दया नहीं मान रहे हैं। इसलिये भटकते फिरते हैं।

वह गृहस्थ रोटियोंके लिये भटकता था और हमलोग संसारके विषयभोगोंके लिये मारे-मारे फिरते हैं। क्योंकि भगवान्‌की दया अपने ऊपर नहीं मानते हैं। दया तो भगवान्‌की है ही। आप मानें तो भी है, नहीं मानें तो भी है। माननेसे मनुष्य उसे जान लेता है और जाननेसे उसको विशेष आनन्द आता है—परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। पहले तो इस बातको सोचे कि भगवान्‌की अपार दया है, और दया समझकर उसको मान लें तो बहुत-सा काम सफल हो जाय। और माननेके बाद उसका ज्ञान अपने-आप ही हो जाय, तब तो बेड़ा पार ही है।

इसपर भी एक कहानी है। कुछ आदमी एक गाँवसे दूसरे गाँव जा रहे थे, बड़ी जोरसे वर्षा आ गयी। बादल इतने घने हो गये कि अपना हाथ नहीं दीखता। जंगलमें ठहरनेके लिये किसी बड़े आदमीने धर्मशाला बना रखी थी। ऐसी परिस्थितिसे बचनेके लिये सभी लोग उस धर्मशालामें चले गये। उस धर्मशालामें बहुत-से कमरे थे। वे कमरोंमें बैठ गये किंतु अंधेरा था। कमरेमें जाड़ा लगता था। ठंडी हवा चल रही थी। सभी ठिठुर रहे थे, किंतु एक कमरा गरम था, वहाँ उनको इतनी सर्दी नहीं लग रही थी। वे सोचने लगे—यहाँ गर्मी कैसे आयी। बात यह थी कि एक कोनेमें धधकते हुए अंगार पड़े थे और उनपर राख आ गयी थी। राखसे ढके रहनेके कारण अंगार किसीको दीखते नहीं थे। किंतु कमरा गरम था। कमरेकी गर्मीका कारण सभी लोग खोजने लगे, सभी कहने लगे कि और तो सब कमरे ठंडे हैं, यही क्यों गरम है ? इसका कोई हेतु होना चाहिये। खोज करनेपर राखसे ढकी हुई आग मिल गयी वहाँ बहुत लकड़ियाँ पड़ी थीं। ईंधनकी कोई कमी नहीं थी। लोगोंने ईंधन जलाना शुरू कर दिया। उससे अग्नि प्रकट हो गयी। लोग दौड़-दौड़कर आये, किसीने कहा—भैया ! थोड़ी आग मुझे भी दे दो। लोगोंने पूछा कि क्या करोगे ? उसने कहा—भोजन बनायेंगे तथा

दीपक जलाकर प्रकाश कर लेंगे। दूसरे सज्जन आये और बोले—भैया मुझे भी थोड़ी आग दीजिये। लोगोंने कहा कि आप क्या कीजियेगा। वे बोले— हम अग्निहोत्री ब्राह्मण हैं। पुत्रके लिये यज्ञ करते हैं, इसलिये हमें अग्निकी आवश्यकता है। लोगोंने कहा—ले जाइये। तदनन्तर एक ब्राह्मण आये, कहने लगे थोड़ी आग मुझे भी दे दीजिये। उनसे पूछा गया कि आप अग्निका क्या करेंगे ? उन्होंने कहा—मैं अपनी आत्माके कल्याणके लिये अग्निहोत्र करूँगा। निष्कामभावसे अग्निहोत्र करनेवालेका अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है और परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है। तत्पश्चात् उनको भी अग्नि लोगोंने दे दी और वे सभी अपना-अपना अभीष्ट काम करने लगे। अब इसमें विचार करना चाहिये कि जब अग्निका ज्ञान नहीं था तब भी कमरा गर्म था। इतना लाभ तो बिना ज्ञान ही मिलता था। अग्निका ज्ञान नहीं रहनेपर भी गर्मी लोगोंको मिल रही थी। जब अग्निका ज्ञान हो गया कि अग्नि कमरेमें है तो सभी लोग अग्निसे लाभ उठाने लगे।

किसीकी मान्यता थी कि 'अग्नि देवता हैं' और कुछ लोग अग्निको एक जड पदार्थ समझते थे। इसमें दो शक्ति है—एक जलानेकी और दूसरी प्रकाशकी। जैसे सूर्यमें दोनों शक्तियाँ हैं—एक जलानेवाली शक्ति और दूसरी प्रकाश करनेवाली। चन्द्रमामें केवल एक ही शक्ति है मात्र प्रकाश करनेवाली, जलानेवाली नहीं, क्योंकि वह ठंडा है। अग्निमें दोनों शक्तियाँ हैं। जिनकी यह श्रद्धा थी कि 'अग्नि देवता हैं' वे अध्यात्म-विषयक लाभ उठाये, कामना सिद्धिविषयक लाभ उठाये। सकामभावसे अग्निहोत्र करनेवाले पुत्र-विषयक लाभ उठाये। जो ब्राह्मण उच्च कोटिका महात्मा बनना चाहते थे, वे उस अग्निमें निष्कामभावसे हवन करके आत्मशुद्धि होनेका लाभ उठाये। इसी प्रकार इन बातोंको महात्मा, ईश्वर, गङ्गा सभीके ऊपर घटा सकते हैं। जिस देशमें महात्मा निवास करते हैं, उस देशमें स्वाभाविक ही जो लाभ होता है वह तो हो ही जाता है, चाहे लोगोंको ज्ञान हो या न हो। महाभारतकी बात है महाराज युधिष्ठिर विराटनगरमें वास करते थे तो भीष्मजीने कौरवोंकी सभामें यह बात कही कि जिस जगह राजा युधिष्ठिर होंगे वहाँ कभी अकाल नहीं होगा। वहाँ कोई

महामारी नहीं आयेगी। दैवी प्रकोप नहीं होगा। जहाँ राजा युधिष्ठिर होंगे वहाँकी प्रजा धर्मात्मा बनेगी; सत्यवक्ता होगी और उस देशमें धन-धान्य बढ़ेगा, धर्म बढ़ेगा। बहुत-सी बातें कहीं। इन सब बातोंको सुनकर दूतोंने बताया कि यह जो बात कहते हैं ये सारी बातें विराटनगरमें मिलती हैं। इस आधारपर दुर्योधनने विराट नगरपर चढ़ाई कर दी। यह ध्यान देना चाहिये कि राजा युधिष्ठिरका कितना भारी प्रभाव पड़ता था। वे जिस देशमें वास करते थे, उस देशमें धन-धान्य और धर्मकी वृद्धि होती थी। वहाँ अकाल नहीं पड़ता था, महामारी नहीं आती थी। विराटनगरमें युधिष्ठिर सालभर रहे, किंतु इसपर किसीका भी लक्ष्य नहीं रहा कि युधिष्ठिरमें ये गुण हैं। फिर भी राजा विराटने युधिष्ठिरसे लाभ उठाया और वहाँके निवासी लाभ उठाये। राजा विराट जब यह जान गये कि ये पाण्डव हैं तो विशेष लाभ उठाये। राजा विराट युधिष्ठिरसे बोले कि मैं अपनी लड़की उत्तराका विवाह अर्जुनके साथ करूँगा। लेकिन अर्जुनने कहा कि नहीं, मेरा बेटा अभिमन्यु है, उसके साथ इसका विवाह कर सकते हैं क्योंकि इसे मैंने पढ़ाया है। इसलिये यह मेरी लड़कीके समान है। विराटने अभिमन्युके साथ उत्तराका विवाह कर दिया। इसी प्रकार कहीं भी कोई महात्मा रहे उस महात्माके रहनेसे स्वाभाविक जो लाभ मिलना है वह तो मिलेगा ही, चाहे उसे जानें, चाहे न जानें। महात्माको महात्मा जानने और माननेसे विशेष लाभ होगा। उसको माननेसे भी बहुत लाभ हो जाता है और मान लेनेसे आगे जाकर वह जान जाता है तथा जाननेसे विशेष लाभ हो जाता है, जाननेसे उसमें श्रद्धा हो जाती है और वह श्रद्धा यदि सकाम हो तो भी लाभदायक और निष्काम हो तो और भी लाभदायक है। यही बात ईश्वरकी भक्तिमें है। बिना प्रभाव जाने ईश्वरकी भक्ति यदि कोई करे तो उससे भी उसको लाभ होता है। जैसे अजामिलने अपने लड़केका नाम 'नारायण' रख लिया था। मृत्युकालमें यमके दूत उसे लेनेके लिये आये तो उसने अपने लड़केका नाम लिया—'नारायण-नारायण'। अजामिल तो समझता था कि मैं अपने लड़केको बुला रहा हूँ।

वह यह नहीं समझता था कि मेरे लड़केका जो नाम है वही नाम भगवान्‌का भी है और इसका उच्चारण करनेसे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और जब पाप नष्ट हो जाते हैं तब वह यमके द्वार नहीं जाता। उसे यह ज्ञान नहीं था। जब भगवान्‌के पार्षद आये तब उसे यह ज्ञान हुआ। भगवान्‌के पार्षदोंने यमदूतोंको मार भगाया और वह बच गया। फिर उसने हरिद्वारमें जाकर भगवान्‌की भक्ति की, जिसके प्रभावसे उसका कल्याण हो गया। तात्पर्य यह कि बिना जाने भी भगवान्‌की भक्ति करनेसे लाभ होता है और यदि भगवान्‌को भगवान् मानकर भक्ति करे तो और भी विशेष लाभ हो जाय। फिर भगवान्‌के विषयमें ज्ञान होनेपर उनमें श्रद्धा हो जाय तो और भी अधिक लाभ हो सकता है। वह श्रद्धा यदि निष्काम हो तो उसके लाभका ठिकाना ही नहीं है।

उपर्युक्त बात समझकर भगवान्‌के नामका जप निरन्तर गुप्त-रूपसे करना चाहिये। किसीसे यह जनाना नहीं चाहिये कि मैं जप करता हूँ। जप भी एक-तार करना चाहिये। तार टूटने न दे। भगवान्‌के नामका जप और भगवान्‌के स्वरूपका ध्यान शिवजीकी भाँति एक-तार करे।

भगवान्‌के बहुत-से नाम हैं, उनमें कोई भी नाम, जिसमें अपनी श्रद्धा-भक्ति और विश्वास हो वही अपने लिये सबसे बढ़कर है। जैसे मुसलमानोंके लिये अल्ला-खुदा, हिन्दुओंके लिये ओम्, राम, हरि, गोविन्द, वासुदेव, नारायण आदि कोई भी भगवान्‌का नाम, जिस नामके ऊपर अपनी श्रद्धा-भक्ति हो उसी नामका जप निरन्तर श्रद्धा-भक्तिपूर्वक करे। यदि भगवान्‌में प्रेम होनेके लिये अथवा भगवान्‌की प्राप्तिके उद्देश्यसे जप करे तो वह जप निष्कामके तुल्य है। यदि कोई भी कामना न करे तो भगवान् उसे समयपर अपने-आप ही मिलेंगे। अतः भगवान्‌की प्राप्तिकी भी कामना न करे। इस प्रकारका भजन बहुत दामी है। भगवान्‌का ध्यान इस प्रकार करे—'भगवान्‌का रूप और लावण्य अलौकिक है। संसारमें वैसा रूप-लावण्य है ही नहीं। करोड़ों कामदेवोंकी भी यदि उपमा दी जाय तो भी उनके साथ वह उपमा लागू नहीं हो सकती, वह तो अनुपम है, अनुत्तम है। उनके

समान कोई उत्तम नहीं है। उनमें कोई उपमा लग नहीं सकती। उसके सदृश कोई वस्तु नहीं जिसकी उपमा दी जाय। वह इतने सुन्दर हैं कि यदि कोई एक बार भी उनके असली रूपकी झाँकी देख ले तो बस उनमें तन्मय हो जाय, संसार भूल जाय, संसारका ज्ञान भूल जाय एवं अपना ज्ञान भूल जाय। उसके आनन्दकी कोई सीमा ही नहीं रहे। जैसे चकोर पक्षी पूर्णिमाके चन्द्रमाको देखकर मुग्ध हो एकटक देखता ही रहता है। पलकें झपकती ही नहीं। इसी प्रकार भगवान्‌को एकटक देखता ही रहे, पलकें झपके ही नहीं।' चकोर पक्षी और चन्द्रमाका उदाहरण भी वहाँ नहीं घटता है, क्योंकि उनके समान तो वही हैं। नेत्रोंके द्वारा उनका रूप-लावण्य देखकर, मुखारविन्द देखकर ऐसा माने कि मानो उसे मैं पी जाऊँ या उनको देखता ही रहूँ। देखते-देखते प्रभुका स्वरूप रह जाय अपनेको भूल जाय।

ध्यान करनेके समय बार-बार रोमांच होने लगे, अश्रुपात होने लगे, आश्चर्य हो, सोचे कि मैं एक तुच्छ आदमी हूँ, फिर भी मुझे भगवान् मिले यह कैसे आश्चर्यकी बात है। खुशीकी सीमा न रहे, ज्ञानकी सीमा न रहे। शान्तिकी सीमा न रहे। वह स्वरूप देखकर भगवान्‌के चरित्रोंको याद करे। भगवान् रामका चरित्र, कृष्णजीका चरित्र जिसे जो प्यारा हो, जिसे जो अपना इष्ट हो, जिसपर अपनी श्रद्धा हो, उसीकी लीला याद करे। उन्हें देख-देखकर स्वयं मुग्ध हो जाय अथवा मानसिक लीला देखकर उस ध्यानमें तन्मय हो जाय। फिर उस लीलामें उनके गुणोंका दर्शन करे।

गुण, यह कि भगवान् बड़े प्रेमी हैं, बड़े दयालु हैं, क्षमावान् हैं—ये सब उनमें अनन्त गुण हैं। उनमें क्षमा, दया, शान्ति, संतोष, सरलता, ज्ञान, वैराग्य अनेक गुण भरे पड़े हैं, अपरिमित हैं। हमलोग जो अनुमान करते हैं, समझते हैं, वह हमारा अनुमान और समझ बहुत कमजोर है। उनके गुणोंको देख-देखकर ऐसा मुग्ध हो जाय, समझे कि मेरे ऊपर भगवान्‌की इतनी दया है कि वे मुझ-जैसे तुच्छ नालायकसे भी इतना प्रेम करना चाहते हैं। भगवान्‌की तरफसे फाटक खुला हुआ है कि तुम चले आओ।

भगवान्‌का हाथ हमारे सिरपर है, अब हमारे लिये किस बातकी कमी है। क्यों चिन्ता करें। भगवान्‌की दयाका रहस्य समझ जाय, तत्त्व समझ जाय तो क्षण-क्षणमें उसे मुग्धता हो जाय। प्रसन्नता हो जाय तथा उसमें धीरता, गम्भीरता, वीरता—ये गुण आ जायें, निर्भयता आ जाय। वह यह समझे कि मैं भगवान्‌की शरण हूँ, भगवान्‌के आश्रित होकर बस भगवान्‌की गोदमें बैठा हूँ।

एक लड़का किसीको गाली देकर, मारकर अपनी रक्षाके लिये दौड़कर माँकी गोदमें बैठ जाय तो वह देखेगा कि अब मैं सुरक्षित हो गया हूँ। परंतु दूसरा आकर कहे कि तेरे लड़केने मुझे गाली दी है, मारा है तो माँ न्याय करती है। लड़केसे पूछती है कि बेटा! तूने इसे मारा है? वह कहता है—हाँ। माँ कहती है—क्यों मारा? वह कहता है इसने पहले मुझे मारा, तब मैंने इसे मारा। माँ उससे पूछती है—बेटा! तूने इसे क्यों मारा? वह कहता है—इसने पहले मुझे गाली दी थी। लड़केसे पूछती है—बेटा! तूने इसे गाली क्यों दी। वह कुछ भी उत्तर न देकर चुप हो जाता है तब माँ समझ जाती है कि मेरे लड़केका कसूर है, फिर माँ उसे थप्पड़ लगाती है। थप्पड़ लगानेसे लड़का रोने लगता है। जो लड़के शिकायत लेकर आये थे वे खुश हो जाते हैं—मनमें सोचते हैं—मार पड़ गयी, बदला ले लिया और यह लड़का साड़ीके भीतरसे तो हँसता है और ऊपरसे रोता है। हँसता है इसलिये कि माँकी मार तो मीठी है, वह लड़का मुझे मारता तो मेरी जान ले लेता। यही बात भगवान्‌के विषयमें है।

पापोंका फल भगवान् हमारे हितके लिये भुगताते हैं यानी मारते हैं, क्योंकि भगवान् हमारे पापोंका दण्ड भुगताकर भविष्यमें जो लाखों जन्म होनेवाले हैं, उनसे बरी कर देते हैं। उद्धार कर देते हैं। जैसे माँने अपने लड़केको दो थप्पड़ मारकर जो दूसरे लड़के मारने आये थे उनसे उसको बरी कर दिया। भगवान् हमलोगोंको सारे पापोंसे यानी दुर्गुणोंसे, सारे दुर्व्यसनोंसे, दुराचारोंसे बचा लेते हैं। निद्रा, प्रमाद—ये सभी खतरेकी

चीजें हैं, मामूली मार मारकर सभी खतरोंसे मुझे बचा लिया। जैसे कोई रोगी है, कोई बीमार है, कोई लड़का मर जाता है या घरमें आग लग जाती है। यह मार है परंतु है बहुत मीठी। इससे जीवका कल्याण हो जाता है। भगवान् सभी पापोंसे मुक्त कर देते हैं। ये सभी अपने मनके विपरीत चीजें आकर प्राप्त हो जायँ तो यही समझना चाहिये कि यह भगवान्‌की देन है, जो दया करके आपने दिया है। जो भगवान्‌की दयाके तत्त्वको समझता है वह तो हँसता ही रहेगा। कोई भी घटना हो उसमें भगवान्‌की दया-ही-दया दीखे। पहले तो दया माननी होती है कि 'मेरे ऊपर भगवान्‌की बड़ी भारी दया है। मान, बड़ाई, प्रतिष्ठा जो अमृतके समान लगती है, उनका नाश हो रहा है।' यह देखकर जो लोग चिन्ता करते हैं वे मूर्ख हैं, समझदार आदमी ऐसा नहीं करते। यह मान ले कि भगवान्‌की बड़ी भारी दया है। उस दयाको बारम्बार याद करके वह मुग्ध होता रहे। भगवान् श्रीरामचन्द्रजी लंकासे जब अयोध्या आये तब अमित रूप धारण करके सबसे यथायोग्य मिलते हैं, जिससे मिलते हैं, उसे बड़ा आश्चर्य होता है। बड़ी प्रसन्नता होती है कि 'भगवान् सबसे पहले मुझसे मिले। मेरा भाग्य खुल गया। कहाँ भगवान् कहाँ मैं। कितने आश्चर्यकी बात है। मैं एक तुच्छ आदमी हूँ, मुझसे त्रिलोकीके नाथ सबसे पहले मिल रहे हैं।' ऐसा उनको अनुभव हुआ।

भगवान् शंकर भगवती उमासे कहते हैं—हे उमा! काठकी कठपुतलीको जैसे सूत्रधार नचाता है, ऐसे ही भगवान् सबको नचाते हैं, यानी लीला करते हैं। उस लीलाको लीला मान ले तो बेड़ा पार है। भगवान्‌की प्रत्येक लीलामें भगवान्‌का विधान भरा है। जो कुछ हो रहा है, सब भगवान्‌के हुक्मसे हो रहा है। यदि भगवान्‌की दया न मानें तो यह भी मूर्खता है और यदि मानकर चलें तो आगे जाकर यह दयाकी बात समझमें आ सकती है। फिर माननेकी बात नहीं रहेगी, परंतु शुरूमें तो मानना पड़ता है, फिर माननेपर देखो कैसा आनन्द आता है। उसमें इतनी धीरता आ

जाती है, इतनी गम्भीरता आ जाती है, इतनी निर्भरता आ जाती है जितनी बालकके हृदयमें माँकी गोदमें बैठनेसे निर्भयता आ जाती है।

भगवान्‌की गोदमें बैठनेके बाद फिर भय किसका ? उसमें गम्भीरता आ जाती है, क्योंकि भगवान्‌में गम्भीरता है। उसमें तितिक्षा आ जाय, प्रेमकी जागृति हो जाय, भगवान्‌में परम श्रद्धा हो जाय फिर तो भगवान्‌को छोड़कर वह कहाँ जाय। आदमी जब भगवान्‌पर निर्भर हो जाता है तो उसका बेड़ा पार हो जाता है।

दूसरी बात यह है कि जैसे कोई एक बुद्धिमान्, विद्वान्, आयुर्वेद-शास्त्रका ज्ञाता वैद्य है, किंतु उसके हाथमें यश नहीं है तो लोग उससे इलाज नहीं करवाते हैं। परंतु एक पढ़ा-लिखा नहीं है, धीरे-धीरे इलाज करते-करते उसे थोड़ा अभ्यास हो गया है, अनुभव हो गया है और उसका इलाज ठीक होता है तो लोग उससे इलाज कराने लगते हैं। इसी प्रकार सफलता यदि थोड़ी भी हो जाय तो दुनिया उलट पड़े। जैसे अंगुलमें (उड़ीसामें) एक लड़का था, उसके विषयमें यह अफवाह हुई कि उसके पास एक जड़ी-बूटी है, जिसे सभी रोगोंमें वह देता है और जिसको देता है वह ठीक हो जाता है। लोगोंको झूठा भ्रम हो गया था। वह बात सच्ची नहीं थी। संयोगवश कुछ आदमियोंका दुःख दूर हो गया तो लोग टूट पड़े। हजारों, लाखों आदमी गये। बड़े-बड़े अफसर गये, धनी गये, उसके हाथमें यश था, सफलता थी, वह दवा नहीं जानता था। वह न कोई विद्वान् था और न वैद्य ही। किंतु थोड़ी-सी दवा कुछ आदमियोंको दी, सफलता हो गयी। इससे गाँव टूट पड़ा, शहर टूट पड़ा, लोग टूट पड़े। अपने भारतवर्षके हजारों, लाखों आदमी वहाँ जाकर भिक्षा माँगने लगे। कहते कि तुम एक चुटकी दवा दे दो। एक जलसा-सा हो गया। यदि सच्ची सफलता हो जाय तो बात ही क्या है। भगवान्‌के यहाँ तो सच्ची सफलता है। महात्माके यहाँ सच्ची सफलता है। यह बात खयाल रखनी चाहिये कि भगवान् मुझे विद्या, बुद्धि, ज्ञान और कुछ न देकर बस सफलता दे दें। भगवान् सफलता दे दें तो

सफलता-ही-सफलता है। किसी प्रकारकी हानि नहीं, नुकसान नहीं।

एक कहानी सुनी जाती है। बीकानेरमें एक बंजारा था। वह बीकानेरकी मेट (मुलतानी मिट्टी) बेचता था। पुराने जमानेमें रेल नहीं थी, बहुत-से बैलोंपर माल लाद-लादकर ले जाता और उसे बेचता। एक बार वह दिल्लीके लिये मेट लादकर चला, रास्तेमें जैसे-जैसे मेट बिकती जाती वह खाली जगहमें बालू भरता जाता। एक बुद्धिमान् आदमी दिल्लीसे बीकानेर जा रहा था, मिला, उसने बंजारेसे कहा कि जो बोरा खाली हो जाता है उसमें बालू क्यों भरता है? बंजारेने कहा कि क्या करूँ? उसने कहा—दो बैलोंका माल एकपर लाद दो। एकको खाली कर दो। व्यर्थमें बैलपर इतना बोझ लादकर उसे क्यों मार रहे हो। उस बंजारेकी समझमें बात आ गयी कि इस आदमीने बुद्धिमानीकी बात कही है। यह बात किसी औरने नहीं बतायी। बंजारा बोला—वाह, तुम्हें धन्यवाद है। कहाँसे आ रहे हो। उसने कहा—दिल्लीसे। बंजारा बोला—दिल्लीमें तुम कौन-सा कार-बार करते हो? वह बोला—दिल्लीमें मैंने बहुत व्यापार किया। बंजारेने पूछा—कितना रुपया कमाया। वह बोला—रुपया तो दस हजार पैदा हुआ था। घाटा लग गया। रुपया भी खर्च हो गया और सिरपर गाँवका ऋण हो गया। मेरी आशा निष्फल हो गयी, मैं सबसे मुँह छिपाकर और अपना प्राण लेकर भाग रहा हूँ, उसने कहा—भैया! आपने हजारों रुपया पैदा तो किया, परंतु बुद्धिसे काम नहीं लिया, तुम्हारी बुद्धि फलवती नहीं है। तुम अपनी बुद्धि अपने पास रखो। तुम्हारेमें इतनी बुद्धि होती तो तू दीवाला निकालकर अपना मुँह छिपाकर क्यूँ आता। वह धीरे-धीरे दिल्ली चला गया और जाकर एक बनियेके यहाँ रेत और बची हुई मुल्तानी मिट्टी उतार दी। सारी मुल्तानी मिट्टी दिल्लीमें बिक गयी और बालूकी ढेरी लगी रही।

वहाँके बादशाहको ऐसी बीमारी हो गयी थी कि हकीमने बतलाया कि राजपूतानेके ओरकी रेत हो तो मँगाओ, उससे ज्यादा आराम मिलेगा। राजाने पूछा—महाराज! कहाँ मिलेगी? वैद्यने कहा—वह तो दूर मिलेगी, आने-

जानेमें तीन दिन लग जायँगे। एक दिन जानेमें,एक दिन प्रबन्ध करनेमें,तीसरे दिन ले आनेमें। एक आदमीने कहा—महाराज, एक बनियेके यहाँ बालूका ढेर लगा हुआ है। राजाने कहा—यदि यहाँ मिल जाय तो बीकानेरसे क्यों मँगाया जाय। जाओ, खरीद लाओ, वह बनियाके पास गया और पूछा कि यह रेत और मुलतानी माटी कहाँसे आयी, क्या भाव है, उसने कहा—यह रेत राजपूतानेकी है जिस भावमें मिट्टी बेची, उसी भावमें इसे भी बेचूँगा। आप चाहे जितना ले लें तो बालू भी मुलतानी मिट्टीके भाव बिक गयी। यह देखकर सभी बंजारे मिलकर उससे बोले कि उसकी बात तुम मान लेते तो इस लाभसे वञ्चित रहते। तात्पर्य यह कि जिसकी बुद्धि काम न करे उसकी बात नहीं माननी चाहिये, चाहे कितना ही बुद्धिमान्, कितना ही पण्डित हो। आपलोग अपनी बुद्धि लगा देंगे तो घाटेमें रहेंगे। बुद्धि लगाना ही नहीं, जो बात ईश्वरने कही है, शास्त्रोंमें कही गयी है, महात्मा कहते हैं, वही काम करना चाहिये। प्रत्यक्षमें लाभ हो सकता है और जहाँ अपनी बुद्धि लगा दी वहीं अंधेरा हो जाता है। जैसे—एक था नास्तिक और एक था आस्तिक। दोनों एक बड़े फल-लदे आमके पेड़के नीचे बैठे थे—आस्तिकने कहा कि भगवान्‌के यहाँ भूल नहीं होती, होती ही नहीं। भगवान्‌की ओरसे होनेवाली क्रिया उसका विधान, मङ्गलमय ही है। सबका हित करनेवाला, कोई भी काम हो सब मङ्गलमय ही है। वहाँ देर तो है, पर अंधेर नहीं। नास्तिक कहता है—एक बात मैं बतलाऊँ। आस्तिक बोला—बतलाओ। नास्तिक बोला—यह जो बड़ा-सा पेड़ है, उसमें भगवान्‌ने छोटा-छोटा फल लगाया और छोटे पेड़में बड़ा-बड़ा फल लगाया। जैसे कोहड़ा है, वह पक जानेपर कोई पाँच सेरका, कोई दस सेरका हो जाता है और आमका पेड़ इतना बड़ा है उसमें छोटा-छोटा आम लगाया। कोई एक पावका, कोई आध पावका, कोई तीन छटाँकका, इससे सिद्ध होता है कि ईश्वरमें बुद्धिकी कमी है। इतनेमें उसके सिरपर ऊपरसे एक आम आकर गिरा, वह पक गया था। उसके गिरनेसे उसके सिरपर चोट लगी। नास्तिक बोला—राम राम राम राम।

आस्तिकने कहा—अगर बड़ा भारी आम दस सेरका तेरे सिरपर गिरता तो क्या हालत होती। कपाल-क्रिया हो जाती। देखो, रामसे भूल नहीं होती, उनमें भूल मानना मूर्खता है।

एक बात भगवान्‌की दयाके विषयमें बता रहा हूँ। भगवान्‌की दया हम जितनी मात्रामें मानते हैं, उससे हजारों, लाखों गुना बढ़कर हमपर उनकी दया है। यह यदि आप मान लें तो आपमें इतनी प्रसन्नता, शान्ति हो जाय कि संसारकी, शरीरकी चिन्ता भूल जायँ और भगवान्-ही-भगवान् याद आयें।

आपका भगवान्‌में विश्वास होना चाहिये। आपकी श्रद्धा होनी चाहिये। आप यह बात मान लें तो आगे जाकर भगवान् खुद अपनेको जना देंगे—

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहिं तुम्हइ होइ जाई॥

भगवान्‌को जो जानना चाहते हैं उन्हें वे जना देते हैं। वह उन्हें जानकर वैसे ही बन जाते हैं। अपने सदृश बना सकते हैं। उनके पास कोई कमी नहीं, उनके लिये कुछ भी करना असम्भव नहीं।

जैसा करे संग वैसा चढ़े रंग

हमलोग बहुत अच्छी-अच्छी बातें सुनते हैं। सत्संगमें अच्छे-अच्छे वक्ता आते हैं और वे सभी रहस्यकी बातें, गोपनीय बातें, तत्त्वकी बातें, ज्ञानकी बातें, भक्ति, वैराग्य और सदाचारकी बातें सुनाते हैं। पर इन्हें सुनकर भी उनका असर नहीं होता उसका क्या कारण है ? यह विचार करना चाहिये। वक्ताके विषयमें मैं क्या कहूँ और श्रोताओंका दोष भी कैसे बतलाऊँ ? सुननेवाले भी भावुक हैं और कहनेवाले भी। मनुष्यका अधिकार है कि वह अपनी अयोग्यता तो प्रकट कर सकता है कि मैं अधिकारी नहीं, लायक नहीं किंतु दूसरोंको ऐसा कहनेका उसे अधिकार नहीं है। चाहे वक्ता हो, चाहे श्रोता। वह अपने लिये कह सकता है। इस विषयमें मुझे एक कहानी याद आ गयी। कहानीमें भी शिक्षा रहती है, कथामें तो रहती ही है। शास्त्रोक्त बातें तो कथा हैं और लोकोक्तिमें कहानी। कहानी इस प्रकार है—

एक राजा थे। उनके पास एक बड़े विद्वान् पण्डित आया करते थे। वे प्रतिदिन राजाको कथा सुनाते थे। उनको कथा सुनाते बरसों-के-बरस बीत गये। राजा साहबने पण्डितजीको एक दिन कहा कि महाराजजी आपको रोज कथा सुनाते हुए कई वर्ष हो गये। जैसी कथा आज सुनायी वैसी ही प्रतिदिन सुनाते हैं। सुनाते-सुनाते आप बूढ़े हो गये और मैं भी बूढ़ा हो गया, किंतु मैं कई वर्ष पहले जैसा था वैसा ही आज भी हूँ। आपकी कथाके निमित्त सालभरमें ३-४ हजार रुपये लग जाते हैं। वह सरकारमें घाटा ही पड़ता है। चार हजार रुपये प्रति साल खर्चा व्यर्थ करूँ ? उसका कुछ तो लाभ होना चाहिये। आपका और मेरा दोनोंका समय नष्ट होता है और रुपया भी खर्च होता है।

इसका उपाय बतलाइये कि सुधार क्यों नहीं होता ? जबकि आपकी बातें मैं सुनता हूँ। आप वैराग्य, भक्ति, ज्ञानकी बातें कहते हैं, किंतु आपकी बातोंको सुनकर न तो मैं भक्त बना, न ज्ञानी, न सदाचारी और न योगी आप इसका उत्तर एक महीनेके अंदर दें। यदि एक महीनेके अंदर इसका उत्तर नहीं मिलेगा तो यह कथा बंद कर दी जायगी और आपका वेतन बंद हो जायगा। आपको अपनी जीविकाका दूसरा रास्ता देखना पड़ेगा। यह सुनकर पण्डितजीके होश गुम हो गये। पण्डितजी विचार करने लगे कि मैं इसका क्या जवाब दूँ। पण्डितजी इसी चिंतामें मग्न हुए जा रहे थे कि रास्तेमें उन्हें एक सच्चे महात्मा मिले। वे बड़े विरक्त और त्यागी थे, उनके चित्तमें बड़ा वैराग्य था। वे वास्तवमें बड़े उच्च कोटिके महापुरुष थे। पण्डितजीका चेहरा उदास देखकर उन्होंने पण्डितजीसे पूछा कि क्या बात है ? पण्डितजी बोले—बात यह है कि एक महीनेके बाद हमारी रोजी यानी जीविका बंद होने जा रही है। महात्माने पूछा—क्यों ? उन्होंने बताया कि राजाने मुझसे एक प्रश्न पूछा है और उसका मेरे पास कोई उत्तर नहीं। प्रश्न यह है कि आप ज्ञान, वैराग्य, भक्तिकी बातें कहते हैं और आपकी बातोंको मैं सुनता हूँ, किंतु मुझमें न तो रत्तीभर वैराग्य हुआ, न ज्ञान और न भक्ति हुई, इसका उत्तर दीजिये नहीं तो यह खर्चा मैं बंद करूँगा। महात्मा बोले—इसके लिये आप क्यों चिंता करते हैं। इसका उत्तर तो मैं दे दूँगा। पण्डितजी बोले—आपके उत्तर देनेसे तो हमारी हानि होगी यानी एक हीनता आयेगी कि इसका उत्तर पण्डितजी नहीं दे सके, इस साधुने दिया है। महात्माने कहा—नहीं, आपकी हीनता नहीं होगी। आप राजा साहबसे कह देना कि यह तो मामूली बात है, इसका उत्तर तो हमारे शिष्य भी दे सकते हैं। और मैं आपका शिष्य बन जाऊँगा। जब मैं आपका शिष्य बनकर उत्तर दूँगा, तब तो आपकी कोई हानि नहीं होगी। पण्डितजी बोले तब तो नहीं होगी। पण्डितजी महाराज दूसरे दिन गये। राजाने फिर पूछा कि महाराज ! आपने उस विषयका उत्तर तैयार किया। पण्डितजी बोले—'महाराज इसका उत्तर तो मामूली बात है,

वह तो हमारे शिष्य भी दे सकते हैं, हमारे ऐसे बहुत-से शिष्य हैं। राजा बोले—मुझे क्या, आप दें या आपका शिष्य, मुझे मेरे प्रश्नका उत्तर मिलना चाहिये। कल आप अपने शिष्यको ले आइयेगा। दूसरे दिन पण्डितजी उस महात्माको ले गये। वे उनके शिष्य बनकर चले गये। राजाने पूछा—आप इनके शिष्य हैं ? बोले—हाँ महाराज ! राजाने कहा कि हमारा प्रश्न आपको मालूम है ? महात्मा बोले—हाँ, मालूम है। आपका प्रश्न यह है कि आपको ज्ञान, वैराग्य, भक्तिकी बातें सुनते हुए करीब तीस वर्ष बीत गये किंतु उसका असर आपपर क्यों नहीं हुआ। राजाने कहा—ठीक यही बात है। उस शिष्यने कहा—इसका उत्तर मैं तब दे सकता हूँ 'जब आप अपनी राज्यकी सारी शक्ति तथा अधिकार दो घड़ीभरके लिये मुझे दे दें।' राजाने कहा—'ठीक है और सब कर्मचारियोंको बुलाकर कह दिया कि मैं अपने राज्यका अधिकार दो घड़ीके लिये इन्हें देता हूँ, ये जैसा कहें वैसा ही तुमलोग करना। राजगद्दीपर बैठकर महात्माने हुक्म दिया कि पण्डितजीको रस्सीसे बाँध दो। उन्होंने उनको बाँध दिया। फिर आज्ञा दी कि दूसरी रस्सी लाकर इस राजाको भी बाँध दो। आज्ञाके अनुसार राजा भी बाँध दिया गया। दोनों सोचते हैं कि ये क्या कर रहे हैं ? कुछ समझमें नहीं आ रहा है। अब महात्मा पण्डितजीसे कहते हैं कि पण्डितजी, आपने राजा साहबको इतने दिनतक कथा सुनायी, अब उनसे कहिये कि मैं तकलीफ पाता हूँ, मेरी रस्सी खुलवा दें। पण्डितजीने राजा साहबसे कहा—'मेरी रस्सियाँ खुलवा दो। राजाने कहा—'मैं कैसे खुलवा दूँ।' पण्डितजी बोले—तो आप खोल दें। राजाने कहा कि 'मैं तो खुद बँधा हुआ हूँ, मैं कैसे खोल दूँ।' फिर बोले—'किसी प्रकार खुलवा दें।' राजाने कहा—'मेरा हुक्म नहीं चलता, कैसे खुलवाऊँ।' न तो मेरा हुक्म चलता है और न मेरे हाथ खुले हुए हैं।' महात्माने राजा साहबसे कहा कि आपने इतने वर्षोंतक पण्डितजीसे कथा सुनी। पण्डितजीसे कहें कि आप मुझे खोल दीजिये। पण्डितजीने कहा कि मैं तो खुद बँधा हुआ हूँ, मैं कैसे खोल दूँ। अब राजा साहबसे महात्माजी पूछते हैं कि आपके प्रश्नका उत्तर मिला

कि नहीं। राजाने कहा—'मैं समझा नहीं।' पूछा—'अभी भी नहीं समझे। आप स्वयं बँधे हुए हैं तो दूसरेको खोल सकते हैं क्या ? अपने खुदको ही नहीं खोल सकते तो फिर दूसरेको कैसे खोलेंगे।' बोले—हाँ समझ गया। पण्डितजीसे कहा—'आप इसका मतलब समझे ? आप बँधे हुए दूसरेको खोल सकते हैं ?' बोले—'नहीं खोल सकते।' तब बोले—महाराज, बात यह है कि ये पण्डितजी कथा तो आपको प्रतिदिन सुनाते हैं किंतु ये खुद बँधे हुए हैं। ये खुद संसारके बंधनसे बँधे हुए हैं और आप इनसे मुक्ति चाहते हैं। यदि पण्डितजी खुद मुक्त हों तो आपको मुक्त करें। खाली कथा सुनानेसे थोड़े ही मुक्ति होती है। तोता और मैना 'राधेकृष्ण-राधेकृष्ण' रटते रहते हैं। इनको यह ज्ञान नहीं है कि हम राधेकृष्ण-राधेकृष्ण क्यों करते हैं। जब बिल्ली आती है और उनको पकड़ती है तो वे 'राधेकृष्ण' भूलकर 'टॉय-टॉय' करने लग जाते हैं। यही दशा पण्डितजीकी है। ऐसी परिस्थितिमें पण्डितजी आपको कैसे छुड़ा सकते हैं। जो संसारसे छूटा हुआ है, खुला हुआ है, ऐसे मुक्त पुरुषका असर पड़ सकता है और जो संसारमें खुद बँधे हुए हैं—ऐश, आराम, भोगोंमें बँधे हुए हैं वे दूसरोंको क्या छुड़ायेंगे। ऐसा पुरुष होना चाहिये जिसका संसारसे तीव्र वैराग्य हो। संसारसे केवल तीव्र वैराग्य ही नहीं, उपरति भी हो और उसे परमात्माके तत्त्वका ज्ञान भी हो। ऐसा उच्च कोटिका महापुरुष हो।

जो स्वयं संसारके बंधनसे मुक्त हो, वह दूसरोंको संसारके बंधनसे मुक्त कर सकता है। कई वक्ता कहते हैं कि हम तो बड़े अच्छे हैं, हमारेमें कोई कमी नहीं है। इन सुननेवालोंमें श्रद्धा, प्रेम, बुद्धि और योग्यता नहीं है। इनकी कमीके कारण ही ये लाभ नहीं उठा सकते। हममें यानी वक्तामें कोई कमी नहीं है, सुननेवालोंमें ही कमी है। बहुत अच्छी बात है, सुननेवालोंमें कमी है तभी तो वे जिज्ञासु बनकर सुननेके लिये आये हैं। अतः वक्ताका यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उनको ठीक बनाये। वक्ता बहानेबाजी करे यानी अपनी सफाई दे कि मैं तो दूधका धुला हुआ हूँ और जो कुछ दोष है

वह सुननेवालोंका है। सुननेवाले कहते हैं कि हमारे अगर दोष नहीं होता तो तुम्हारे यहाँ सुनने आते ही क्यों ? दोष दूर करनेके लिये ही तो आये हैं। वक्ताका यह कर्तव्य होना चाहिये कि वह श्रोताके दोषको दूर करे। वक्ता ज्ञानी होना चाहिये, क्योंकि सुननेवाले तो अज्ञानी हैं ही। कहनेवाला यदि ज्ञानी है तो उसपर ही भार पड़ता है, अज्ञानीपर भार नहीं है। वे तो इतना कहकर दूर हो जाते हैं कि हम तो बेसमझ हैं, अज्ञानी हैं, तुम्हारे यहाँ आये हैं अब तुम योग्य बना दो। हम तो अयोग्य हैं ही। तुम हमसबको योग्य बना दो। अगर योग्य बनानेकी तुम्हारी शक्ति नहीं है तो तुम फिर अपनेको उपदेष्टा, शिक्षा देनेवाला, उपदेश देनेवाला क्यों मानते हो ? इस विषयपर दूसरोंके विषयमें कहना कठिन है। मैं अपने विषयमें कह सकता हूँ कि मैं सबको योग्य बना लूँ, उपदेश देकर, आदेश देकर, व्याख्यान देकर, उनका अंधकार दूर कर दूँ या उनका राग-द्वेष दूर कर दूँ, उनको लायक बना लूँ, यह मेरी शक्ति नहीं है। इसीलिये उपदेश देनेकी, आदेश देनेकी मेरी शक्ति भी नहीं है, अधिकार भी नहीं है। इसलिये हम कहते हैं कि हमारी सामर्थ्य भी नहीं है, हम पात्र भी नहीं हैं और हम अधिकारी भी नहीं हैं, न जातिसे, न वर्णसे, न आश्रमसे और न योग्यतासे। मैं इस लायक नहीं हूँ। मैं तो शास्त्रोंमें लिखी हुई बातोंको आपकी सेवामें अपनी भाषामें कह दिया करता हूँ। यह तो मुझे विश्वास है कि उन बातोंको यदि हमलोग काममें लायें तो हमारा सुधार होकर उद्धार हो सकता है। गीताजीकी बातें भगवान्‌की बातें हैं। कोई हमारे घरकी बातें नहीं हैं और शास्त्रोंकी बातें ऋषियोंकी बातें हैं। ऋषियोंकी और भगवान्‌की बातोंको हम काममें लायें तो हमारा सुधार होकर उद्धार हो सकता है और यदि आप काममें लायें तो आपका सुधार होकर उद्धार हो सकता है। एक शक्ति वस्तुगत होती है, जिसमें वस्तुकी शक्तिका इतना प्रभाव पड़ता है कि उसके प्रभावसे अपने-आप ही सबका सुधार हो जाता है। और सुननेवालोंकी श्रद्धापर भी निर्भर करता है। सुननेवाले अपनी श्रद्धासे लाभ उठा सकते हैं। वह हमारे वशकी बात

नहीं है। यह तो सुननेवालेकी महिमा है। मेरेमें ऐसी कोई महिमाकी बात, करामात या सामर्थ्य नहीं है कि जो अपने प्रभावको डालकर यानी अपनी शक्ति लगाकर आपलोगोंमें कोई जागृति मैं कर दूँ।

हमारी माता-बहनें भोली-भाली होती हैं, भाईलोग भी भोले होते हैं। हमारे-जैसा चालाक आदमी उन्हें ठग लेता है। कोई रुपया ठग लेता है, कोई सतीत्व। कोई गृहस्थीके रूपमें, कोई साधुके रूपमें, कोई अपनेको ज्ञानी बताकर, अपनेको महात्मा बतलाकर, अपनेको योगी बतलाकर, अपनेको भक्त बतलाकर, भोली-भाली जनताको विशेषकर माता-बहिनोंको ठग लेता है। ऐसी परिस्थितिमें हमलोगोंको माता-बहिनों और भाइयोंको सावधान रहना चाहिये। आजकल व्याख्यान देनेवाले हमारे-जैसे बहुत-से फिरते हैं। वे कंचन और कामिनीके दास होते हैं और कितने ही मान-बड़ाई और प्रतिष्ठाके दास होते हैं। कितने तो अपनेको गुरु कहते हैं और कितने ही अपनेको गुरु ही नहीं कहते, बल्कि 'हम तो भगवान् हैं' ऐसा कहते हैं। इस तरह कोई अपनेको भगवान् बतलाते हैं, कोई अपनेको महात्मा बतलाते हैं और कोई अपनेको योगिराज बतलाते हैं। हम उनको जानते हैं कि बाबाजीकी झोलीमें जेवड़ा है किंतु कहते नहीं, क्योंकि कहनेका अपना अधिकार नहीं, किसीका दोष निकालना अपना अधिकार नहीं है। जानते हैं, किंतु जानते हुए भी नहीं कहते। यह दशा इस समय संसारकी हो रही है। खयाल करना चाहिये कि सैकड़ों वक्ताओंमें कोई एक वास्तविक महापुरुष होता है, साधारण मनुष्योंमें तो लाखों-करोड़ोंमें कोई एक होता है। मैं दूसरोंके लिये तो नहीं कह सकता कि अमुक आदमी अपनेको योगी कहता है, किंतु योगी नहीं, अमुक आदमी अपनेको महात्मा कहता है पर महात्मा नहीं। अमुक आदमी अपनेको ज्ञानी कहता है पर ज्ञानी नहीं। दूसरोंके विषयमें इस प्रकार कहनेका हमारा अधिकार नहीं है। अपने विषयमें मैं कह सकता हूँ कि मेरी सामर्थ्य नहीं है। कोई दूसरा आदमी यदि भूलसे मान ले तो धोखा खा सकता है। मैं तो कहता हूँ कि मैं एक साधारण

व्यक्ति हूँ। मेरी यह सामर्थ्य नहीं है, मैं अधिकारी नहीं हूँ। मैं तो अपनी भाषामें महापुरुषोंकी बातें बतला देता हूँ और केवल उन बातोंको काममें लानेसे मनुष्यका कल्याण हो जाता है। वह तो उन बातोंकी शक्ति है, मेरी शक्ति नहीं है। यह तो मैं कह सकता हूँ कि गीताके वचन भगवान् कृष्णके वचन हैं। रामायणमें तुलसीदासजीके वचन हैं। महाभारतमें वेदव्यासजीके वचन हैं। वेदव्यासजी, तुलसीदासजी, भगवान् श्रीकृष्णजीके वचनोंका पालन करनेसे उद्धार हो जाय, इसमें कहना ही क्या है? किंतु यदि कोई मूर्खतासे मेरे शरीरको महात्मा मान ले, अच्छा भक्त मान ले और इसकी सेवा-पूजा करने लगे तो मेरे ऊपर उनका भार चढ़ता है, किन्तु उनका कल्याण हो जाय इसके लिये मैं गारन्टी नहीं दे सकता, क्योंकि मैं नहीं समझता कि मेरी सेवा करनेसे उनका कल्याण हो जायगा, बल्कि मैं तो यह समझता हूँ कि उन्हें धोखा होगा क्योंकि मैं एक साधारण—मामूली मनुष्य हूँ।

किसीने पूछा कि संसारमें उच्च कोटिके महापुरुषोंको आप बतला दें। इस विषयमें असली बात यह है कि मेरे बतलाये हुए आदमीमें अगर आप श्रद्धा करें तब तो मेरेमें ही करनी अच्छी है। यदि हमारी बातपर विश्वास करके अमुक पुरुष महात्मा है या ज्ञानी है या योगी है, आप मानने लगें तब तो आपने मेरी बातका बहुत अधिक आदर किया—यह तो सोचनेकी बात है। बात यह है कि संसारमें हम किसे महात्मा मानें, भक्त मानें, ज्ञानी मानें, कैसे काम चले? एक नम्बरकी बात तो यह है कि सबसे बढ़कर महात्माओंके भी महात्मा ईश्वर हैं, उनकी शरण होना चाहिये। वे स्वयं प्रकट होकर या महात्माके रूपमें आकर हमलोगोंको मिल सकते हैं। एक नम्बरमें तो ईश्वरोंका ईश्वर, महात्माओंके भी महात्मा—वह परमात्मा हैं। दूसरे नम्बरमें स्वयं भगवान्‌की वाणी—भगवद्गीता भी महात्माओंकी महात्मा है। जैसे सिक्खलोग नानक

साहबके 'ग्रंथ साहब'को ही ईश्वरके तुल्य मानकर, 'ग्रंथ साहब' को गुरु मानकर उसके अनुसार चलते हैं वैसे ही भगवद्गीता यह एक नंबरकी पुस्तक है। हमारे देखनेमें, जाननेमें अध्यात्मविषयमें इसके बराबर और कोई पुस्तक नहीं है। हम सर्वज्ञ नहीं, हमने सारे शास्त्र नहीं देखे हैं किन्तु जितने देखें हैं उनमें हमें सबसे बढ़कर भगवद्गीता मालूम दी। और भी बहुत-सी अच्छी-अच्छी पुस्तकें हैं, जैसे भागवत, रामायण, महाभारत आदि जितनी भीं पुस्तकें हैं—वे सभी अच्छी हैं। पुस्तकोंसे हम बहुत लाभ उठा सकते हैं। इसी बातको खयालमें रखकर हमलोग पुस्तकोंके प्रचारकी चेष्टा करते हैं। गीतामें भगवान् कहते हैं—'हे अर्जुन ! तेरा-मेरा संवाद, यानी इस गीताशास्त्रका संसारमें जो प्रचार करता है, उसके समान मेरा प्यारा काम करनेवाला दुनियामें न तो कोई है और न भविष्यमें कोई होगा। भगवान्ने यह घोषणा की। गीताजीके १८ वें अध्यायके ६८ और ६९ वें श्लोकमें गीताकी बड़ी महिमा गायी है। जो कोई मेरे भक्तोंको गीता धारण करवायेगा वह मेरी परमभक्तिके द्वारा मुझे प्राप्त होगा। इतना ही नहीं, उससे बढ़कर मेरा प्यारा काम करनेवाला दुनियामें न कोई है और न भविष्यमें कोई होगा। इस बातको पढ़कर हमारे मनमें यह श्रद्धा हुई, यह विश्वास हुआ कि भगवान् इस प्रकारकी गारण्टी दे रहे हैं तो इसपर थोड़ा गौर करना चाहिये। यह एक अलौकिक बात है, अद्भुत बात है, छिपी हुई रहस्यकी बात है। अबतक भगवान्की, गीताकी तथा शास्त्रोंकी बात बतायी गयी। जिनका संग करनेसे हमारी आत्मामें तीव्र वैराग्य पैदा हो, वह श्रेष्ठ पुरुष है। जिनका संग करनेसे, जिनके दर्शनसे, भाषणसे, स्पर्शसे, चिन्तनसे भी हमारी आत्मामें तीव्र वैराग्य पैदा हो तो समझ लेना चाहिये कि यह वीतराग पुरुष है। क्योंकि सूर्यभगवान्की रोशनी यानी धूपमें हम बैठते हैं तो हम गरम हो जाते हैं। तब प्रतीत होता है कि सूर्यभगवान्में न जाने कितनी गर्मी है। हम पाँच मिनट धूपमें बैठते हैं तो चरणोंसे लेकर मस्तकतक एकदम गरम हो जाते हैं—तब सोचते हैं कि यह गर्मी कहाँसे आयी, उसी समय ज्ञान हो जाता है कि यह गर्मी सूर्यभगवान्से

आयी। अग्निके नजदीक बैठते हैं तो उसकी शक्तिके अनुसार उसका भी ताप आता है और केदारनाथमें बर्फपर चलते हैं तो वहाँ चरणोंसे लेकर मस्तकतक सर्दी छा जाती है, वह बर्फका प्रभाव है। इसी प्रकार जिसके दर्शन, स्पर्श, भाषण, वार्तालाप तथा चिन्तनसे हमारेमें महात्माओंके लक्षण आयें, गुणातीत पुरुषोंके, ज्ञानी महात्माओंके लक्षण जो गीताजीमें लिखे हैं आने लगें तो समझ लेना चाहिये कि ये ज्ञानी महात्मा पुरुष हैं। जिनके संग, दर्शन, स्पर्श और भाषणसे हमारे हृदयमें, हमारे भावोंमें वे लक्षण आने लगें, जो लक्षण भगवान्‌ने अपने भक्तोंके लिये गीताके बारहवें अध्यायके तेरहवें श्लोकसे अध्यायकी समाप्तितक बतलाये हैं तो यह समझ लेना चाहिये कि ये भगवान्‌के भक्त हैं। यह उनकी सच्ची परीक्षा है। और जिनके दर्शनसे हमारे शरीरमें, मन-बुद्धि और इन्द्रियोंमें दैवी सम्पदाके वे लक्षण आने लगें जो गीताके १६ वें अध्यायके पहले तीन श्लोकोंमें लिखे हैं तो यह समझना चाहिये कि यह दैवी सम्पदावाला पुरुष है। और जिनके संग, दर्शन, भाषण, वार्तालापसे आसुरी सम्पदाके लक्षण हमारेमें आयें यानी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, राग-द्वेष आदि आने लगें तो यह समझना चाहिये कि यह देखनेमें तो मनुष्य है लेकिन वास्तवमें साक्षात् राक्षस है अन्यथा हम राक्षस क्यों होते जा रहे हैं ? इनका ही तो हमारे ऊपर प्रभाव पड़ा है। इसी प्रकार जिनके दर्शन, भाषण, स्पर्शसे हमारे शरीरमें योगका ज्ञान बढ़े तो यह समझना चाहिये कि यह योगी है। क्योंकि कहावत है— ***'जैसा करे संग वैसा चढ़े रंग'*** अपनेपर जैसा रंग चढ़े उसको देखकर परीक्षा करनी चाहिये। यह पक्की और सच्ची परीक्षा है। इसपर राजस्थानके बीकानेर राज्यकी एक कहानी याद आ गयी—

बीकानेर राज्यमें एक राजा थे। जब वे गद्दीपर बैठे तब उन्होंने बुजुर्गों तथा अपने सब कुटुम्बवालोंको बुलाया और कहा कि दादाजी ! एक बात मैं आपलोगोंसे पूछता हूँ, आप निर्भयतासे जैसी बात आपके दिलमें आये, सच्ची बात कहें। वे बोले—आप पूछें। चाहे छोटा ही हो राजाकी

पदवीपर है, इसलिये आदरसूचक सम्बोधनसे बोलते हैं। राजाने पूछा कि आपने यानी बूढ़े आदमियोंने हमारी तीन पुस्तोंका राज्य देखा है। मेरा भी राज्य अभी दस-पाँच वर्षोंसे आपलोग देख रहे हैं। इसके पहले मेरे पिताजीका राज्य था। वह भी आपने देखा है। उसके पहले मेरे दादाजीका राज्य था, उसे भी आपने देखा है। अपेक्षाकृत हमारे तीनोंके राज्यमें किसका राज्य बढ़िया है। मेरा शासन बढ़िया है या मेरे पिताजीका शासन बढ़िया था या मेरे दादाजीका शासन बढ़िया था। एक बुजुर्गने कहा कुँवर साहब आप बड़े आदमी हैं। आपकी परीक्षा हमलोग नहीं कर सकते। आपकी, आपके पिताजी और आपके दादाजीकी परीक्षा करना हमारी सामर्थ्यसे बाहर है। हम अपनेपर जो असर पड़ा वह बात कह सकते हैं। उससे आप अंदाजा लगा लीजिये। उन्होंने कहा—जब आपके दादाजीका राज्य था तब मेरी उम्र बीस सालकी थी। और मैं बालूके टीलेपरसे आ रहा था। मेरे कानोंमें एक स्त्रीके रोनेकी आवाज पड़ी। मैं उसके पास गया। वह वैश्यजातिकी स्त्री थी। उसके शरीरपर लगभग दस हजारके जेवर लदे हुए थे। वह रो रही थी। मैंने पूछा कि बहन! तूँ क्यों रो रही है? उसने बतलाया कि मैं मुकलावा (गौना) लेकर अपने पीहरसे ससुराल जा रही थी। मेरे साथ बैलगाड़ी तथा ऊँटपर हजारों रुपयोंका सामान लदा हुआ था। मेरे साथ बहुत रक्षक भी थे, किंतु बीस आदमियोंका दस्युदल आया और एकाएक हमला कर दिया। हमारे जितने आदमी थे सब भाग गये तथा मैं भी भाग गयी और वे सब माल लूटकर ले गये। मैं अपने प्राणोंको बचाकर इस टीलेपर चली आयी हूँ। मैंने उसके पीहर तथा ससुरालका पता पूछा, वह उसने बतला दिया, मैं उसके ससुरालवालोंको जानता था। मैंने कहा कि बहिन, तू कोई बातकी फिकर मत कर। मैं तुम्हें घरपर पहुँचा दूँगा। अपनी बहनके समान समझकर मैं उसे उसकी ससुराल ले गया। ससुरालवाले उसकी खोजमें थे ही। उनके पास पहले ही खबर पहुँच गयी थी कि डाकू आये और सब धन लूटकर ले गये और अपनी बहूका पता नहीं, कहाँ है?

मैंने वहाँ पहुँचकर उन्हें बताया कि टीलोंके बीच बैठकर रो रही थी। वह घर पहुँचकर बेहाल होकर रोने लगी और अपनी सास, श्वशुर, पतिको कहने लगी कि मेरी बड़ी भारी दुर्दशा हुई, जो कुछ मालमत्ता था वह सब लुट गया और मैं भी किसी प्रकार अपने प्राण लेकर जंगलमें भाग गयी। इन्होंने मेरी रक्षा की और ये मुझे यहाँ ले आये, मैं इनका क्या गुण गाऊँ। अब आपलोग इनको संतुष्ट करके भेजें। इसपर ससुरालवाले बोले—महाराज आपने हमारा बड़ा उपकार किया, हमारी बहूको जीवन-दान दिया, हमारे धनकी रक्षा की। हम आपको एक हजार रुपया पुरस्कार देना चाहते हैं। मैंने कहा कि मैंने रुपयोंके लिये उपकार नहीं किया। मैंने अपना कर्तव्य समझकर यह कार्य किया। मैंने सोचा कि तूँ मनुष्य है और यह मेरा धर्म है। अतः मैंने धर्म समझकर यह काम किया है। इनामके लिये नहीं किया। उन्होंने बहुत कोशिश की और कहा अच्छा पाँच सौ रुपया ले लें, कुछ तो लें। किंतु मैंने एक पैसा भी नहीं लिया। वे बेचारे लाचार हो गये, मैंने नहीं लिया तो वे क्या करें। फिर मैं अपने घर आ गया। जबतक आपके दादाजी जीवित थे, तबतक मेरी ऐसी वृत्ति बनी रही। जब आपके दादाजीका शरीर शान्त हो गया, उस समय मेरी आयु करीब पचास वर्षकी हो गयी। उस समय मेरे मनमें यह बात आने लगी कि मुझे एक स्त्री मिली थी। कैसा मौका था, जंगलमें उसका दस हजार रुपयेका जेवर उतार लेते तो मुझे कौन पकड़ता। वे दस हजार रुपये और आजतक ब्याज होता तो कितना होता, क्योंकि आठ आनेके ब्याजसे बारह वर्षमें दुगुना होता है, इस प्रकार काफी रुपये हो जाते। मैंने बड़ी भूल की कि धर्मके झंडेको पकड़कर बैठ गया। अब धर्म मुझे क्या काम देता है। यदि मैं वह गहना उतार लेता तो आज मालामाल हो जाता, ऐसी भावना मुझमें आने लगी। विचारके द्वारा तो वह बात मुझे बुरी मालूम देती किंतु रुपयोंकी आसक्तिके कारण मनमें यह बात आने लगी कि मैंने वह भूल की। वह रुपया घरमें आ जाता तो आज मौज करता। और कुँवरसाहब, जब आप गद्दीपर बैठे उस समय मेरी

उम्र सत्तर वर्षकी हो गयी थी और अब मेरी उम्र ७५ या ८० के नजदीक जाने लगी है, तथा मेरी स्त्री मर गयी। अब मेरे मनमें आने लगा कि उस समय उसे समझाकर अपने साथ ले आता तो बुढ़ापेकी अवस्थामें स्त्री-की-स्त्री रहती और रुपयों-का-रुपया। दस हजार रुपायोंका गहना भी अपने हजम हो जाता और उसे समझाकर अपनी औरत बना लेते और अब मौज करते। अब बुढ़ापेमें वह सेवा करती और रुपयोंसे मौज करते। कुँवरसाहब, अब जब हम मरनेके नजदीक हैं तब यह बात हमारे दिलमें आने लगी। वृद्धावस्थामें यह दशा है। कुँवरसाहब, हमने तो अपनी दशा आपको बतलायी। आपमें कौन बड़ा, कौन छोटा उसका निर्णय करनेकी हमारी सामर्थ्य नहीं। मैंने तो आपको यह बतला दिया कि आपके राज्यमें हमारे मनकी यह दशा है और आपके बापके राज्यमें यह दशा थी और आपके दादाजीके राज्यमें यह दशा थी। अब किसका राज्य बढ़िया और किसका राज्य घटिया इसका अंदाज तो आप स्वयं ही लगायें।

कहनेका अभिप्राय यह है कि ***'जैसा करे संग वैसा चढ़े रंग'।*** कोयलेकी दलालीमें हाथ काला होता ही है। हम कोयलेकी खानमें गये तो हमारा कपड़ा भी काला हो गया। यह बात हमने अक्षरशः बहुत जगह देखी है, आजमाईश करके देखी है कि जैसा संग किया गया है उसका असर जरूर होगा। अपने ऊपर जैसा असर हो उससे हमें अंदाज लगाना चाहिये। यह असली परीक्षा है। मैंने यह जो युक्ति बतलायी, यह युक्ति ऐसी बलवान् है कि इसके लिये किसीको पूछनेकी आवश्यकता नहीं।

सत्यकी महिमा

एक सत्यवादी धर्मात्मा राजा थे। उनके नगरमें कोई भी साधारण मनुष्य बिक्री करनेके लिये बाजारमें अन्न, वस्त्र आदि कोई वस्तु लाता और वह वस्तु यदि सायंकालतक नहीं बिकती तो उसे राजा खरीद लिया करते थे। लोकहितके लिये राजाकी यह सत्य प्रतिज्ञा थी। अतः सायंकाल होते ही राजाके सेवक शहरमें भ्रमण करते और किसीको कोई वस्तु लिये बैठे देखते तो वे उससे पूछकर और उसके संतोषके अनुसार कीमत देकर उस वस्तुको खरीद लेते थे।

एक दिनकी बात है। स्वयं धर्मराज ब्राह्मणका वेष धारण करके घरकी टूटी-फूटी व्यर्थकी चीजें, जो बाहर फेंकने योग्य कूड़ा-करकट थीं, एक पेटीमें भरकर उन सत्यवादी धर्मात्मा राजाकी परीक्षा करनेके लिये उनके नगरमें आये और बिक्रीके लिये बाजारमें बैठ गये, किंतु कूड़ा-करकट कौन लेता ? जब सायंकाल हुआ, तब राजाके सेवक नगरमें सदाकी भाँति घूमने लगे। नगरमें बेचनेके लिये लोग जो वस्तुएँ लाये थे, वे सब बिक चुकी थीं। केवल ये ब्राह्मण अपनी पेटी लिये बैठे थे। राजसेवकोंने इनके पास जाकर पूछा—'क्या आपकी वस्तु नहीं बिकी ?' उन्होंने उत्तर दिया—'नहीं।' राजसेवकने पुनः पूछा—'आप इस पेटीमें बेचनेके लिये क्या चीज लाये हैं ? और उसका मूल्य क्या है ?' ब्राह्मणने कहा—'इसमें दारिद्र्य (कूड़ा-करकट) भरा हुआ है। इसका मूल्य है एक हजार रुपये।' यह सुनकर राजसेवक हँसे और उन्होंने कहा—'इस कूड़ा-करकटको कौन लेगा, जिसका एक पैसा भी मूल्य नहीं है ?' ब्राह्मणने कहा—'यदि इसे कोई नहीं लेगा तो मैं इसे वापस अपने घर ले जाऊँगा, राजसेवकोंने तुरंत राजाके पास जाकर इसकी सूचना दी। इसपर राजाने कहा—'उन्हें वस्तु वापस न ले जाने दो। मूल्य जो कुछ कम-से-कम हो सके, उन्हें संतोष कराकर वस्तु खरीद लो।'

राजसेवकोंने आकर ब्राह्मणसे उस पेटीके दो सौ रुपये मूल्य कहा, किंतु ब्राह्मणने एक हजारसे एक पैसा भी कम लेना स्वीकार नहीं किया। राजसेवकोंने पाँच सौ रुपयेतक देना स्वीकार कर लिया, परंतु ब्राह्मणने इन्कार कर दिया। तब राजसेवकोंमेंसे कुछ व्यक्ति उत्तेजित होकर राजाके पास आये और बोले—'महाराज ! उनकी पेटीमें दारिद्र्य (कूड़ा-करकट) भरा हुआ है, एक पैसेकी भी चीज नहीं है और पाँच सौ रुपये देनेपर भी वे नहीं दे रहे हैं। ऐसी परिस्थितिमें आपको उनकी वस्तु नहीं खरीदनी चाहिये।' राजाने कहा—'नहीं, हमारी सत्य प्रतिज्ञा है, हम सत्यका त्याग कभी नहीं करेंगे, इसलिये ब्राह्मणको, वे जो माँगें, देकर उस वस्तुको खरीद लो।' यह सुनकर राजसेवक राजाके इस आग्रहको देखकर हँसे और लौट आये। उन्होंने निरुपाय होकर ब्राह्मणको एक हजार रुपये दे दिये और उनकी पेटी ले ली। ब्राह्मण रुपये लेकर चले गये और राजसेवक पेटीको राजाके पास ले आये। राजाने उस दारिद्र्यसे भरी पेटीको राजमहलमें रखवा दिया।

रात्रिमें जब शयनका समय हुआ, तब राजमहलके द्वारसे वस्त्राभूषणोंसे सुसज्जित एक बहुत सुन्दर युवती निकली। राजा बाहर बैठकमें बैठे हुए थे। उस स्त्रीको देखकर राजाने पूछा—'आप कौन हैं ? किस कार्यसे आयी हैं ? और क्यों जा रही हैं ?' उस स्त्रीने कहा—'मैं लक्ष्मी हूँ। आप सत्यवादी धर्मात्मा हैं, इस कारण मैं सदासे आपके घरमें निवास करती रही हूँ, पर अब तो आपके घरमें दारिद्र्य आ गया है, जहाँ दारिद्र्य रहता है वहाँ लक्ष्मी नहीं रहती। इसलिये आज मैं आपके यहाँसे जा रही हूँ।' राजा बोले—'जैसी आपकी इच्छा।'

थोड़ी देर बाद राजाने एक बहुत ही सुन्दर युवा पुरुषको राजमहलके दरवाजेसे निकलते देखा तो उससे पूछा—'आप कौन हैं ? कैसे आये हैं और कहाँ जा रहे हैं ?' उस सुन्दर पुरुषने कहा—'मेरा नाम दान है। आप सत्यवादी धर्मात्मा हैं, इस कारण सदा मैं आपके यहाँ निवास करता रहा हूँ। अब जहाँ लक्ष्मी गयी है, वहीं मैं जा रहा हूँ; क्योंकि जब लक्ष्मी चली गयी,

तब आप दान कहाँसे करेंगे ?' तब राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

उसके बाद फिर एक सुन्दर पुरुष निकलता दिखायी दिया। राजाने उससे भी पूछा—'आप कौन हैं ? कैसे आये हैं और कहाँ जा रहे हैं ?' उसने कहा—'मैं यज्ञ हूँ। आप सत्यवादी धर्मात्मा हैं, अतः आपके यहाँ मैं सदासे निवास करता रहा। अब आपके यहाँसे लक्ष्मी और दान चले गये तो मैं भी वहीं जा रहा हूँ; क्योंकि बिना सम्पत्तिके आप यज्ञका अनुष्ठान कैसे करेंगे ?' राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

तदनन्तर फिर एक युवा पुरुष दिखायी दिया। राजाने पूछा—'आप कौन हैं ? कैसे आये और कहाँ जा रहे हैं ?' उसने कहा—'मेरा नाम यश है। आप धर्मात्मा सत्यवादी हैं, अतः मैं आपके यहाँ सदासे रहता आया हूँ; किंतु आपके यहाँसे लक्ष्मी, दान, यज्ञ सब चले गये तो उनके बिना आपका यश कैसे रहेगा ? इसलिये मैं भी वहीं जा रहा हूँ, जहाँ वे गये हैं।' राजाने कहा—'ठीक है।'

तत्पश्चात् एक सुन्दर पुरुष फिर निकला। उसे देखकर उससे भी राजाने पूछा—'आप कौन हैं, कैसे आये और कहाँ जा रहे हैं ?' उसने कहा—'मेरा नाम सत्य है। आप धर्मात्मा हैं, अतः मैं सदा आपके यहाँ रहता आया हूँ; किंतु अब आपके यहाँसे लक्ष्मी, दान, यज्ञ, यश— सब चले गये तो मैं भी वहीं जा रहा हूँ।' राजाने कहा—'मैंने तो आपके लिये ही इन सबका त्याग किया है, आपका तो मैंने कभी त्याग किया ही नहीं, इसलिये आप कैसे जा सकते हैं ? मैंने लोकोपकारके लिये यह सत्य प्रतिज्ञा कर रखी थी कि कोई भी व्यक्ति मेरे नगरमें बिक्री करनेके लिये कोई वस्तु लेकर आयेगा और सायंकालतक उसकी वह वस्तु नहीं बिकेगी तो मैं उसे खरीद लूँगा। आज एक ब्राह्मण दारिद्र्य लेकर बिक्री करने आये जो एक पैसेकी भी चीज नहीं; किंतु सत्यकी रक्षाके लिये ही मैंने विक्रेता ब्राह्मणको एक हजार रुपये देकर उस दारिद्र्य (कूड़ा-करकट)को खरीद लिया। तब लक्ष्मीने आकर कहा कि आपके घरमें दारिद्र्यका वास हो गया, इसलिये मैं नहीं रहूँगी।

इसी कारण मेरे यहाँसे लक्ष्मी आदि सब चले गये। ऐसा होनेपर भी मैं आपके बलपर डटा हुआ हूँ।' यह सुनकर सत्यने कहा—'जब मेरे लिये ही आपने इन सबका त्याग किया है, तब मैं नहीं जाऊँगा।' ऐसा कहकर वह राजमहलमें वापस प्रवेश कर गया।

थोड़ी ही देर बाद 'यश' लौटकर राजाके पास आया। राजाने पूछा—'आप कौन हैं और क्यों आये हैं?' उसने कहा—'मैं वही यश हूँ, आपमें सत्य विराजमान है। चाहे कोई कितना ही यज्ञकर्त्ता, दानी और लक्ष्मीवान् क्यों न हो, किंतु बिना सत्यके वास्तविक कीर्ति नहीं हो सकती। इसलिये जहाँ सत्य है, वहीं मैं रहूँगा।' राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

तदनन्तर यज्ञ आया। राजाने उससे पूछा—'आप कौन हैं और किसलिये आये हैं?' उसने कहा—'मैं वही यज्ञ हूँ, जहाँ सत्य रहता है, वहीं मैं रहता हूँ, चाहे कोई कितना ही दानशील और लक्ष्मीवान् क्यों न हो, किंतु बिना सत्यके यज्ञ शोभा नहीं देता। आपमें सत्य है, अतः मैं यहीं रहूँगा।' राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

तत्पश्चात् दान आया। राजाने उससे भी पूछा—'आप कौन हैं और कैसे आये हैं?' उसने कहा—'मैं वही दान हूँ। आपमें सत्य विराजमान है और जहाँ सत्य रहता है वहीं मैं रहता हूँ; क्योंकि कोई कितना ही लक्ष्मीवान् क्यों न हो, बिना सद्भावके दान नहीं दे सकता। आपके यहाँ सत्य है, इसलिये मैं यहीं रहूँगा।' राजा बोले—'बहुत अच्छा।'

इसके अनन्तर लक्ष्मी आयी। राजाने पूछा—'आप कौन हैं और क्यों आयी हैं?' उसने कहा—'मैं वही लक्ष्मी हूँ। आपके यहाँ सत्य विराजमान है। आपके यहाँ यश, यज्ञ, दान भी लौट आये हैं। इसलिये मैं भी लौट आयी हूँ।' राजा बोले—'देवि! यहाँ तो दारिद्र्य भरा हुआ है, आप कैसे निवास करेंगी?' लक्ष्मीने कहा—'राजन्! जो कुछ भी हो, मैं सत्यको छोड़कर नहीं रह सकती।' राजा बोले—'जैसी आपकी इच्छा।'

तदनन्तर वहाँ स्वयं धर्मराज उसी ब्राह्मणके रूपमें आये। राजाने

पूछा—'आप कौन हैं और कैसे आये हैं ?' धर्मराज बोले—'मैं साक्षात् धर्म हूँ, मैं ही ब्राह्मणका रूप धारण करके एक हजार रुपयेमें आपको दारिद्र्य दे गया था। आपने सत्यके बलसे मुझ धर्मको जीत लिया। मैं आपको वर देनेके लिये आया हूँ, बतलाइये, मैं आपका कौन-सा अभीष्ट कार्य करूँ ?' राजाने कहा—'आपकी कृपा है। मुझको कुछ भी नहीं चाहिये। आप जिस प्रकार सदा करते आये हैं, उसी प्रकार करते रहिये।'

इस दृष्टान्तसे यह सिद्ध हो गया कि जहाँ सत्य है, वहाँ सब कुछ है। वहाँ कभी सम्पत्ति, दान, यज्ञ, यशकी कमी भी हो जाय तो मनुष्यको घबराना नहीं चाहिये। यदि सत्य कायम रहेगा तो ये सभी आप ही लौट आयेंगे और ये न आयें तो भी कोई हानि नहीं, उसका परम कल्याण है। अतः कल्याणकामी पुरुषको सत्यका कभी त्याग नहीं करना चाहिये, बल्कि निष्कामभावसे उसका अवश्य दृढ़तापूर्वक पालन करना चाहिये।

यथार्थ भाषण, सद्गुण और सदाचारका नाम ही सत्य है। भगवान्‌ने गीतामें कहा है—

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते॥
यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥ (१७। २६-२७)

'सत्—इस प्रकार यह परमात्माका नाम सत्यभाव (परमात्माके अस्तित्व) में और श्रेष्ठभाव (सद्गुण) में प्रयोग किया जाता है तथा हे पार्थ ! उत्तम कर्म (सदाचार) में भी सत् शब्दका प्रयोग किया जाता है तथा यज्ञ, तप और दानमें जो स्थिति (निष्ठा) है वह भी 'सत्' इस प्रकार कही जाती है और उस परमात्माके लिये किया हुआ (भगवदर्थ) कर्म तो निश्चय ही 'सत्' ऐसे कहा जाता है।'

किसी कविकी यह उक्ति प्रसिद्ध है—

बंदा सत्त नहिं छाँड़िये सत्त छाँड़े पत जाय।
सतकी बाँधी लच्छमी फेरि मिलैगी आय॥

गीता गङ्गासे भी बढ़कर है। शास्त्रोंमें गङ्गा-स्नानका फल मुक्ति बतलाया गया है। परन्तु गङ्गामें स्नान करनेवाला स्वयं मुक्त हो सकता है, वह दूसरोंको तारनेका सामर्थ्य नहीं रखता। किन्तु गीतारूपी गङ्गामें गोते लगानेवाला स्वयं तो मुक्त होता ही है, वह दूसरोंको भी तारनेमें समर्थ हो जाता है। गङ्गा तो भगवान्‌के चरणोंसे उत्पन्न हुई है और गीता साक्षात् भगवान् नारायणके मुखारविन्दसे निकली है। फिर गङ्गा तो जो उसमें आकर स्नान करता है उसीको मुक्त करती है, परन्तु गीता तो घर-घरमें जाकर उन्हें मुक्तिका मार्ग दिखलाती है। इन्हीं सब कारणोंसे गीताको गङ्गासे बढ़कर कहते हैं।

गीता गायत्रीसे भी बढ़कर है। गायत्री-जपसे मनुष्यकी मुक्ति होती है, यंह बात ठीक है; किन्तु गायत्री-जप करनेवाला भी स्वयं ही मुक्त होता है, पर गीताका अभ्यास करनेवाला तो तरन-तारन बन जाता है। जब मुक्तिके दाता स्वयं भगवान् ही उसके हो जाते हैं, तब मुक्तिकी तो बात ही क्या है। मुक्ति उसकी चरणधूलिमें निवास करती है। मुक्तिका तो वह सत्र खोल देता है।

गीताको हम स्वयं भगवान्‌से भी बढ़कर कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

गीताश्रयेऽहं तिष्ठामि गीता मे चोत्तमं गृहम्।
गीताज्ञानमुपाश्रित्य त्रींल्लोकान् पालयाम्यहम्॥

(वाराहपुराण)

'मैं गीताके आश्रयमें रहता हूँ, गीता मेरा श्रेष्ठ घर है। गीताके ज्ञानका सहारा लेकर ही मैं तीनों लोकोंका पालन करता हूँ।'

—**गीता-तत्त्वविवेचनी** नामक पुस्तकसे